'भारतीय पुस्तकमाला' के अन्तर्गत चौथी किताब

गुजराती के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार की अमर कृति

स्नेह-यज्ञ

[भाग : १]

: लेखक :

रमणलाल वसंतलाल देसाई



बनारस

सरस्वती प्रेस

सरस्वती-प्रेस की प्रवृत्तियाँ

- 'हंस' मासिक — ६) वार्षिक
- 'कहानी' मासिक — ३) वार्षिक
- गल्प-संसार-माला — ४।≈) ,,
- भारतीय पुस्तक-माला — ३) ,,
- हंस पुस्तकें — ३) ,,
- जाग्रत-महिला-साहित्य — ३।।) वार्षिक
- आज की किताब—३) वार्षिक
- प्रगतिशील पुस्तकें—३) ,,
- विविध प्रकाशन

: प्रधान कार्यालय :

— बनारस कैण्ट —

— शाखा —

खजूरी बाजार, इन्दौर : अमीनुद्दौला पार्क, । लखनऊ ।

— मुद्रक —

श्रीपतराय, सरस्वती-प्रेस, बनारस कैण्ट ।

स्नेह-यज्ञ

[गुजराती का एक उच्चकोटि का सामाजिक उपन्यास]

लेखक

रमणलाल वसंतलाल देसाई

: अनुवादक :

श्यामू संन्यासी

सरस्वती प्रेस,

बनारस।

: क्रान्तिकारी विचारों से ओतप्रोत पन्द्रह सौ से अधिक
पृष्ठों का अमर साहित्य ; छः सुन्दर
एवं मोहक पुस्तकों के रूप में घर बैठे नीचे लिखे
वार्षिक मूल्य में मिल सकता है :

वार्षिक मूल्य

तीन रुपया

छः शिलिंग

बर्मा में

तीन रुपया आठ आना

युद्ध-जनित बढ़ा हुआ मूल्य एक रुपया

द्वितीय संस्करण १००० : अप्रैल, १९४१ ।

भारतीय-पुस्तक-माला

स्पष्टीकरण

[इस माला के अंतर्गत भारत की सभी प्रांतीय भाषाओं के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों के अनुवाद देने का आयोजन है जिसमें प्रत्येक हिन्दी जाननेवाले को कम से कम यह तो पता रहे कि उसके अपने देश का भी साहित्य कितनी उन्नति कर रहा है। इस माला के पहले तीन भागों में हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यास-लेखक स्व० प्रेमचन्द का 'कायाकल्प' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ है। प्रकाशक।]

स्नेह-यज्ञ

[भाग : १]

स्नेह-यज्ञ

१

दुनियामां सदा वीते तेनी आ मुज वात छे।
कला छे ना, नवुं छे ना, रसीलुंय नहि कशुं।

—कलापी *

प्रत्येक मनुष्य महत्त्वाकांक्षी होता है; परन्तु किसी बिरले ही की महत्त्वाकांक्षाएँ फलीभूत होती हैं। मन की धारा परिपूर्ण होनेवाले धन्य क्षण का आनन्द अकथनीय है। माँगने पर मिले उसी का नाम सुख है। सर सुरेन्द्रलाल की आज दिन तक प्रत्येक महत्त्वाकांक्षा सफल हुई थी। आज उनकी एक नई इच्छा परिपूर्ण हुई थी। वह बिजली के चमकते प्रकाश में आराम से बैठे परमानन्द का अनुभव करते हुए समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। समाचार-पत्रों के कॉलम के कॉलम उनके चरित्र, जीवन और योग्यता के गुण गान से रँगे हुए थे। कई पत्रों ने तो उन पर अग्रलेख लिखे थे। सभी पत्रों में उनकी तरह-तरह की तसवीरें छपी थीं। किसी तसवीर में वह बैठे थे, तो किसी में खड़े थे। किसी तसवीर में मुस्करा रहे थे, तो किसी में सिर पर अंगुली रखे विचार-

* दुनिया में सदा बीतती वही यह मेरी बात।
नहीं कला, नावीन्य नहीं, सरसता भी तो नहीं कुछ।

मग्न थे। लेख पढ़कर और तसवीरें देखकर सन्तुष्ट हो वह मुस्कराये

तीन साल से वह जनता के भाग्य-विधाता बने थे। प्रान्तीय धारा सभा में बहुमत से चुने जाकर वह सरकार की ओर से मन्त्री नियुक्त हुए थे। इस नियुक्ति में विशेषता यह थी कि प्रांतीय सरकारों के आज तक के मंत्रियों में सर सुरेन्द्रलाल सब से कम उम्र थे। शिक्षा-विभाग उन्हीं को सौंपा गया था। सर सुरेन्द्र के सम्मान में कल एक शानदार प्रीति भोज हुआ था। वहाँ उन्होंने बहुत ही सुन्दर भाषण दिया। शिक्षा-सम्बन्धी अपने उच्च आदर्शों को उन्होंने ऐसी अलंकारिक भाषा में व्यक्त किया कि श्रोता मुग्ध हो गये। समाचार-पत्रों ने तो यही विश्वास किया—विश्वास कराया—कि सर सुरेन्द्र के मंत्री होने से ही शिक्षा-विभाग का नवयुग प्रारम्भ हो गया।

प्रशंसा की इन मधुर रागिनियों में एक-दो पत्रों ने अपना बेसुरा राग भी अलापा; परन्तु सर सुरेन्द्र के मन में उनका कोई मूल्य न था। एक पत्र ने तो यहाँ तक कड़वी टीका की कि—'कौंसिल का का पहाड़ पिछले दस वर्षों से खोदा जा रहा है, परन्तु उसमें से अभी तक चूहा भी नहीं निकला। पत्थर के ढोके और कतलें अवश्य निकलती जा रही हैं। सर सुरेन्द्र चूहे से भी छोटा प्राणी—अलबत्त जीवित—निकाल सकेंगे तो हम अवश्य ही उनकी प्रशंसा करेंगे।'

विरोधात्मक टिप्पणी पढ़कर सर सुरेन्द्र सहज रूप में मुस्कराये। सूर्य से दुश्मनी रखनेवाला तुच्छ मनुष्य घृणा से सूर्य की ओर धूल फेंकता है और जिस तरह सूर्य हँसता है उसी प्रकार हँसकर सुरेन्द्र ने उस पत्र को एक ओर रख दिया—यद्यपि उस पत्र ने भी उनकी सुन्दर तसवीर तो छापी ही थी!

'साहब, आपसे कोई मिलना चाहता है।' नौकर ने आकर खबर दी।

'इस वक्त?' उन्होंने परिश्रान्त होकर पूछा।

'जी हाँ ! कहा है कि बहुत ही महत्त्वपूर्ण काम है ।'

'कौन है ?'

'यह तो मालूम नहीं । नाम बताने से इन्कार कर दिया ।'

'अच्छा बुलाओ । पर कह देना कि मैं बहुत ही थका हुआ हूँ ।'

नौकर गया । बड़प्पन के साथ ही भुगते जानेवाले कुछ दुःखों को सहे बिना बड़े आदमियों का छुटकारा नहीं । बड़प्पन की लाचारी के साथ गादी जैसी कुर्सी की पीठ पर वह लुढ़क गये ।

'कोई पत्र-प्रतिनिधि होगा !' उन्होंने मन ही मन सोचा । राजनैतिक क्षेत्र में शीघ्रता से उगते और शीघ्रता से अस्त होते हुए महापुरुषों के विचार जाने बिना दुनिया दुखी रहेगी, ऐसा सोचकर महापुरुषों के चारों ओर एकत्रित होनेवाले पत्र-प्रतिनिधियों से सर सुरेन्द्र तंग आ गये थे । पत्र-प्रतिनिधियों को सब तरह की स्वतंत्रता रहती है । राह चलते ही वे घेर लें या घर पर धावा बोल दें ! बड़े आदमियों से वे न केवल उनकी तसवीर माँगते हैं, पर उनकी पत्नी की तसवीर भी माँग सकते हैं । वे यह भी पूछ सकते हैं कि मुलाक़ात देनेवाला सिगरेट पीता है या हुक्का ! उन्हें यह जानने की भी अत्यन्त आवश्यकता रहती है कि वे रात को दस बजे के बाद जग सकते हैं या नहीं ? 'ईश्वर है कि नहीं' से शुरू करके 'आपके बाल-बच्चे हैं या नहीं', तक की प्रश्न-माला में जो-जो प्रश्न आ जाते हैं उन सबको समझने के लिए संवाददाता बहुत ही आतुर रहते हैं !

संवाददाताओं से परेशान सुरेन्द्र ने दूसरी बात सोची—शायद कोई प्रार्थी (अर्जदार) हो । अधिकारियों की दुनिया में सिवा प्रार्थियों के और कोई बसता ही नहीं । और सुरेन्द्र तो अब अधिकारियों के भी अधिकारी बन गये थे ।

नौकर ने एक आदमी के साथ प्रवेश किया । फिर धीरे से दर्वाजा बन्द करके बाहर चला गया ।

सुरेन्द्र ने उसकी ओर नहीं-सा—बड़े आदमी छोटे आदमियों की ओर रखते हैं इतना-सा—ध्यान दिया। कोई बड़ा आदमी होता तो ऊपरी दिखावे से ही पता लग जाता। जैसे बैठे थे वैसे ही बैठे-बैठे सुरेन्द्र ने आगन्तुक से पूछा :

'किसी समाचार-पत्र की ओर से आये हैं ?'

'जी नहीं।' आगन्तुक ने उत्तर दिया।

'आपको कुछ कहना है ? मैं बहुत ही थका हूँ।'

'साहब, मैं भी थका हुआ ही हूँ। मेरी इच्छा आपका अधिक समय लेने की नहीं है।'

'तो कहिये, इस वक्त क्या काम है ?'

'आपको मेरा पत्र तो मिला ही होगा ?'

'देखिये, जल्दी कीजिये ! मुझे पत्र तो बहुत से मिले। मेरे सेक्रेटरी ने आपको जवाब भी दिया ही होगा।'

'इसीलिए तो मैं आया हूँ। यह उत्तर पाकर कि 'फ़ुर्सत के समय आपसे मिला जा सकता है', मैं ऐसे समय आया। इसके सिवा आपको फ़ुर्सत भी कब रहती है ?'

'ठीक ! परन्तु यह बतलाइये कि आपको काम क्या है ?' सर सुरेन्द्र अब इस असभ्य बातूनी आदमी से तङ्ग आ गये थे। वे उसे ग़ौर से देखने लगे।

'ग़रीबों की सहायता के लिए स्थापित हमारा मण्डल आपसे रुपए माँगता है।'

'कौन-सा मण्डल ?'

'विशेष प्रसिद्धि प्राप्त तो नहीं है। आप चाहें तो उसे प्रख्यात कर सकेंगे।'

'एक सभा कीजिये, और...और...बधाई के प्रस्ताव में मैं जो सहायता दूँ उसे प्रकट कीजिये।'

'साहब, हमारा मण्डल बिना सार्वजनिक सभाएँ बुलाये ही सब काम करता है।'

'बहुत विचित्र! वार्षिक रिपोर्ट और नियमावली भेजिये। देखकर मैं तै करूँगा कि कितनी सहायता दी जाय। बस! अब आप जा सकते हैं।'

'हम रिपोर्ट या नियमावली कुछ भी नहीं छापते। ग़रीबों को आवश्यक सहायता देने का काम गुप्त रूप से किया जाता है। हम यह भी तै कर चुके हैं कि आपसे कितनी रक़म ली जाय।'

सुरेन्द्र ने फिर उस आदमी को ग़ौर से देखा। वह उन्हें कुछ पागल-सा लगा। हँसकर वह बोले :

'आप कितनी रक़म पाने की आशा करते हैं? मैं उस पर विचार करूँगा।'

'आपको सोचने का कष्ट भी न करने दिया जाय।'

'इसका मतलब?' कठोर पड़ते हुए सुरेन्द्र ने पूछा।

'मतलब यह कि आपने वकालत में काफी पैसा पैदा किया है। प्रधान पद से जो वेतन मिलेगा उसकी आपको बिलकुल आवश्यकता नहीं है। इसलिए वेतन की वह रक़म अपने मण्डल के लिए लेने का हमने सोचा है।'

'आपने ऐसा सोचा होगा। परन्तु मेरी धारणा जुदी है।' इस पागल आदमी को दूसरे के वेतन के बारे में इतनी निश्चित धारणा का विचार कर खिलखिलाकर हँसते हुए सर सुरेन्द्र बोले—अब आप तशरीफ़ ले जाइये।' सर सुरेन्द्र ने पास की मेज़ पर घण्टी बजाने का बटन दबाने के लिए हाथ लम्बा किया।

'तीसरे आदमी की आवश्यकता नहीं। आप एक चेक लिख दीजिये तो मैं चला जाऊँ।' आगन्तुक ने कहा।

'तुम कैसे आदमी हो! चेक किस बात का माँगते हो! चले

जाओ यहाँ से।' सुरेन्द्र क्रोधित हुए और बटन दबाने के लिए फिर से हाथ लम्बा किया।

मैंने आपको मना किया है कि तीसरा आदमी बुलाने की आवश्यकता नहीं। आप हम दोनों का समय व्यर्थ गँवा रहे हैं।'

'यह आदमी कहीं पागल तो नहीं है?' सर सुरेन्द्र ने जरा जोर से कहा।

'यह तो डॉक्टर ही बतला सकते हैं। आपकी या मेरी राय की कोई क़ीमत नहीं। अब आप जल्दी कीजिये और मुझे अपने वेतन के बराबर का चेक लिख दीजिये।'

'क्या तुम मुझे डराना चाहते हो?'

'मैं तो हर महीने आपका वेतन माँगूँगा। यदि दे दिया करेंगे तो डराने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।'

सर सुरेन्द्र अब दृढ़तापूर्वक उठ खड़े हुए। उन्होंने बटन पर हाथ रखा। परन्तु हाथ रखते ही वापस खींच लिया। आगन्तुक उनकी ओर रिवाल्वर ताने खड़ा था।

सर सुरेन्द्र डरपोक नहीं थे। रिवाल्वर चलाना वह भी खूब जानते थे यद्यपि आज तक किसी आदमी पर चलाने की ज़रूरत नहीं पड़ी थी। परन्तु इस समय तो वह साधन-विहीन थे। बाहर नौकर बैठे थे; भीतर उनकी पत्नी मीनाक्षी जग रही थीं; फिर भी वह किसी को खबर तक नहीं दे सकते थे। घंटी बजाकर या चिल्लाकर भी किसी को बुला सकना असंभव था। आगन्तुक उनको रिवाल्वर का निशान बनाये खड़ा था।

'मैं चेक नहीं देने का; समझे!'

'मैं मज़ाक करने नहीं आया हूँ। यदि मुझे चेक नहीं मिला तो मंत्रिपद के पहले दिन ही आप दुनिया से अदृश्य हो जायेंगे। सोच लीजिये। मैं पाँच मिनट का समय देता हूँ।'

पाँच मिनट में तो सर सुरेन्द्र कई बातें सोच गये। उन्हें बड़े आदमियों के घर के इस नियम पर झुँझलाहट आई कि बिना बुलाये कोई भीतर नहीं आ सकता। आदमियों से भरे-पूरे घर में इस समय वह अकेले ही थे। आज जीवन की महान् आशा पूरी हुई थी। उस आशा के सम्पूर्ण होने के अवसर पर ही मात्र पाँच हजार की छोटी-सी रक़म के लिए प्राणों को संकट में डालना ठीक नहीं। यह पागल बाहर निकलते ही पकड़ा जा सकेगा। यदि अभी नहीं भी पकड़ा गया तो पुलिस बाद में अवश्य पकड़ लेगी।

फिर बैंक मैनेजर को एक चिट्ठी लिख देने पर वह चेक का भुगतान नहीं करेगा। तो क्यों न अभी एक चेक लिखकर इस विचित्र आदमी से मुक्ति पाई जाय। भविष्य में आत्म-रक्षा की पूरी सतर्कता रखी जा सकेगी।

'एक मिनट और बचा है।' आगन्तुक ने सर सुरेन्द्र के विचारों को रोका।

चुपचाप सर सुरेन्द्र ने चेक बुक निकाली और उस आदमी से कहा : 'एक हजार देता हूँ।'

'जी नहीं, पूरे पाँच हजार लिखिये।'

थोड़ा-सा हँसकर सुरेन्द्र ने पाँच हजार का चेक लिखा, फाड़ा, उस आदमी को दिया और पूछा :

'तुम्हारा नाम क्या है?'

'मैं तो हर महीने आया करूँगा। कभी मेरा नाम भी जान जायेंगे।'

'परन्तु भले आदमी, इस तरह का ब्लैक मेलिंग कब तक चल सकेगा?'

'वह हम देख लेंगे। अब मैं जाऊँगा। आप दस मिनट तक न तो यहाँ से हिलियेगा और न किसी को बुलाइयेगा। उसके बाद सारे

घर और गाँव को जैसे ठीक समझें खबर दे दीजियेगा। परन्तु इसके पहले यदि कुछ किया तो प्राणों की खैरियत नहीं।'

इतना कहकर आगन्तुक तेजी से कमरे से बाहर हो गया। उसने धमकी न दी होती तो भी सर सुरेन्द्र दस मिनट तक किसी क बुलाते। वह बहुत ही आश्चर्यान्वित हो गये थे।

२

खुदा पासे कहुँ छुं के
गुन्हा तारा हमारा हो !
गुन्हेगारी सनमनी श्रे
गुन्हेगारी हमारी छे ! *

—कलापी

रात को ग्यारह बजने का अन्दाज होगा। यूरोपियन पुलिस कमिश्नर आराम से सोये थे। सिरहाने टेलीफोन की घंटी टन-टना उठी। एक गाली देकर प्रत्युत्तर में घंटी बजा पुलिस कमिश्नर ने चोंगा उठा लिया।

'कौन है ?'

'इन्स्पेक्टर...' जवाब मिला।

'क्यों ? क्या हुआ ? पुलिस थाने में आग तो नहीं लग गई ?'

'सर सुरेन्द्रलाल के यहाँ एक वारदात हो गई है !'

'किसी का खून हुआ ?'

'नहीं। परन्तु खून करने की धमकी देकर एक बदमाश पाँच हजार का चेक ले गया।'

'तुम जाओ और पता लगाकर रिपोर्ट भेजो।

* खुदा (के) आगे कहता हूँ गुन्हा तेरा हमारा हो !
गुन्हेगारी सनम की यह गुन्हेगारी हमारी है।

'सर सुरेन्द्र आपको ही बुलाते हैं!'

'Humbug! वह आज प्रधान हो गये इसलिए? उनसे मेरा सलाम बोलो और कहो कि मैं कल सवेरे उनसे अवश्य मिलूँगा। तुम खुद जाकर सर सुरेन्द्र से मिलो और सच्ची घटना जानकर अनुसन्धान शुरू करो। बस।'

कमिश्नर ने चोंगा रख दिया। 'भारतीय मंत्रियों के हाथों सत्ता आते ही वे कितने महत्त्वशाली हो गये!' यों बड़बड़ाता हुआ कमिश्नर सो गया।

ठीक साढ़े ग्यारह बजे इन्स्पेक्टर दीनानाथ सर सुरेन्द्र के बँगले पर जा पहुँचे। सुरेन्द्र ने आदि से अन्त तक सब हकीकत कह सुनाई। इन्स्पेक्टर ने सम्मान प्रदर्शित करते हुए ध्यान-पूर्वक सब कुछ सुना। बाद में दीनानाथ ने खास-खास बातें पूछीं:

'उस आदमी का हुलिया कैसा था?'

'साधारण मध्यम वर्ग का आदमी लगता था।'

'ठीक! परन्तु हुलिया कैसा था? काला, गोरा, अपराधी जैसा?'

'उसकी ऊँचाई अधिक थी। गेहुँआ रंग था। अपराधी जैसा नहीं लगा, परन्तु कुछ पागलपन की झलक आती थी।'

'आप देखें तो पहिचान लेंगे?'

'हाँ, उसका चेहरा-मोहरा मुझे ठीक से याद है।'

'आपका किसी पर सन्देह है?'

'नहीं। मेरी समझ में ही नहीं आता कि क्यों कोई ऐसा काम करेगा। मेरा कोई भी दुश्मन नहीं।'

'आप याद कर देखिये! वकालत के पेशे में कई बार ऐसा हो सकता है।'

मीनाक्षी कुछ भी नहीं बोल रही थी। उसे इस बात में कुछ भी रस हो ऐसा नहीं प्रतीत हुआ। मीनाक्षी गोरी और सुन्दर थी। बिजली

के शीतल पाण्डुर प्रकाश में शांत, स्थिर और आराम से बैठी हुई वह सुन्दरी किसी अप्सरा की प्रतिमा जैसी लगती थी। उसका भरा हुआ शरीर सहज स्थूलता की ओर झुक रहा था, परन्तु दीनानाथ को उससे सौन्दर्य में कोई कमी न दिखाई दी। भरा हुआ शरीर सौन्दर्य को और गहरा बना रहा था। नूतन कलाभिरुचि हमारी प्राचीन चित्रकारियों से धुँधली हो रेखा-मर्यादित पतली देहयष्टि को ही सौन्दर्य प्रमाण मान बैठी है। रविवर्मा के माँसल, स्वर्णरंगी शरीरों के चित्रालेखन नूतन कलादृष्टि को स्थूल, विकारमय और नाटकीय—नकली—लगते हैं। वह चाहे जैसे हों; परन्तु मीनाक्षी को देखते ही दीनानाथ को लगा कि रविवर्मा की 'मोहिनी' झूला झूल, परिश्रान्त हो विश्राम करने सोफ़ा पर लुढ़क गई है।

उसे आश्चर्य हुआ। इतनी बातचीत हुई फिर भी मीनाक्षी क्यों कुछ नहीं बोलती? अधिकारियों की पत्नियाँ पति से भी अधिक चंचल और जागरूक होती हैं? मीनाक्षी इस महासत्य का अपवाद कैसे हो सकती है। सौन्दर्य सदा आकर्षक होता है। दीनानाथ सौन्दर्य से आकर्षित न हो, इतना वृद्ध न था। और फिर वृद्धों ही ने कब यह स्वीकार किया है कि वे सौन्दर्य से आकर्षित नहीं होते!

उसने मीनाक्षी से पूछा—क्या आप इस बारे में कुछ बतला सकेंगी?

'मुझसे पूछा?' नींद में से जागती हुई सी मीनाक्षी बोली—मुझे तो कुछ भी पता न लगा।

'इसे कहाँ से खबर हो! यह तो सो गई होगी।' सर सुरेन्द्र ने कहा।

पति को मंत्री पद की प्राप्ति का प्रसंग इतना मनहूस तो नहीं हो सकता कि उसी दिन पत्नी को जल्दी नींद आने लगे। दीनानाथ ने पूछा—'आप कितने बजे सोई थीं?'

'इससे क्या पूछ रहे हैं ? यह क्या अपराधिनी है ?' सुरेन्द्र ने हँसते हुए कहा।

'क्षमा कीजियेगा ! परन्तु कई बार घर के सभी लोगों से पूछने पर बहुत से सूत्रों का पता लग जाता है। आपके नौकरों से भी मुझे पूछ-ताछ करनी होगी।

'पाँच हजार रुपए गये और इसमें इतनी झंझट !' मीनाक्षी ने थोड़ी अनिच्छा प्रदर्शित करते हुए कहा। वेतन पानेवाले इन्स्पेक्टर को यह रकम थोड़ी न लगी। लोगों की ऐसी चीखपुकार होते हुए भी कि पुलिसवाले बहुत रिश्वत लेते हैं, इन्स्पेक्टर जैसे को भी पाँच हजार इकट्ठा करने में कई वर्ष लग जाते हैं।

'सवाल पाँच हजार रुपए का नहीं है। परन्तु वह बदमाश तो हर महीने आते रहने की धमकी दे गया है।' सर सुरेन्द्र ने कहा।

दीनानाथ ने घटना-स्थल देखा। नौकरों को बुलाकर प्रश्न पूछे— वह किधर से आया था और किस रास्ते गया ; उसके हाथ या पाँव का कोई निशान तो नहीं था ; वह पैदल आया था या किसी सवारी से ; घर में घुसते और बाहर निकलते समय उसके चेहरे पर कुछ परिवर्तन दीख पड़े थे या नहीं—ऐसी-ऐसी अनेकों छोटी-छोटी बातें दीनानाथ ने नौकरों से पूछीं, परन्तु नौकरों ने आज इतने आदमियों को आते-जाते देखा था कि रात में आनेवाले उस आदमी की ओर अधिक ध्यान देना आवश्यक नहीं समझा।

बारह-सवा बारह बजे दीनानाथ ने बँगला छोड़ा। जाते-जाते एक चालाक दीखते नौकर को एक ओर बुलाकर उसने पूछा—अरे, तू कितने साल से यहाँ नौकरी करता है ?

'तीनेक साल हुए।'

'कितनी तनख्वाह पाता है ?

'साहब और माजी की मेहरबानी है। दाल-रोटी मिल जाती है।'

'चालाक लगता है, क्यों ?'

'हम ग़रीबों की चालाकी से क्या ?' पुलिस अधिकारी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित होने के विचार से घबराकर वह बोला।

'एक बात पूछता हूँ, जवाब बराबर देगा न ?'

'हाँ, सरकार ! जो जानता हूँगा वही कहूँगा।' बात निकलवाने की पुलिस की शक्ति और उपायों के बारे में नौकर जानता था।

'साहब और माजी की आपस में बनती तो है ?' दीनानाथ प्रश्न पूछकर उसके चेहरे को घूरने लगा। नौकर थोड़ा क्षुभित हुआ। क्षण भर बाद उसने उत्तर दिया :

'बनती क्यों नहीं ? दुःख ही क्या है ?'

'सच-सच कहता है ?'

'किसी भी दिन तकरार नहीं सुनी, साहब !

'मेरा एक काम करेगा ?'

'मुझसे हो सका तो करूँगा।'

'तेरे साहब और माजी की आपस में बराबर बनती है या नहीं इस पर ध्यान रखना और कुछ ऐसा मालूम हो तो मुझे खबर करना।' इतना कहकर दीनानाथ ने एक दस रुपए का नोट नौकर के हाथ में रख दिया। नौकर ने अपना हाथ पीछे खींच लिया और नोट ज़मीन पर गिर जाने दिया। अपने स्वामी की चुगली खाने के लिए मिलने-वाले पैसे उसे बुरे लगे। यह काम उसे कठिन लगा। तो भी पुलिस से छुटकारा पाने के लिए उसने कहा—

'बहुत अच्छा, साहब ! पैसों की ज़रूरत नहीं।' उसने नोट दीनानाथ को वापिस दे दिया।

दूसरे दिन सुबह के समाचार-पत्रों में इस घटना का कुछ ज़िक्र आया 'ऊँचे अधिकारी के यहाँ बदमाश' आदि बड़े-बड़े शीर्षक दिये गये ; परन्तु अभी तक नाम निश्चित न हो सका था।

पुलिस की जबरदस्त खोज शुरू हुई। सुबह कमिश्नर खुद सर सुरेन्द्र के यहाँ गये और सब बातें फिर से सुनीं। साँझ होने से पहले तो पुलिस द्वारा की गईं गिरफ़्तारियों का समाचार अखबारों में प्रकाशित हो गया। पुलिस ने दो लम्बे बालवाले आदमियों को पकड़ा, क्योंकि उनके बाल बहुत लम्बे थे ; दो बिना बालवाले आदमियों को पकड़ा क्योंकि उनके सिर पर बाल बिलकुल ही नहीं थे; एक बहुत मोटे-ताजे आदमी को पकड़ा, एक अस्थिशेष कंकाल को पकड़ा ; एक गुण्डे-जैसा लगता आदमी और एक अत्यधिक शौकीन दीखता आदमी : ऐसे भिन्न-भिन्न तरह के आदमियों को पुलिस ने पकड़ा। दो-तीन आदमी तो वारदात होनेवाली रात को सर सुरेन्द्र के बँगले के पास से होकर निकले थे। पुलिस सरगर्मी से इन आदमियों और अपराध के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का काम करने लगी।

परन्तु बैंक मैनेजर को सावधान कर देने पर भी सर सुरेन्द्र का दिया हुआ चेक भुन चुका था। मैनेजर ने कारकुन को बुलाकर कहा—सर सुरेन्द्र के हस्ताक्षरों वाला चेक आते ही मेरे पास लाना। उसका भुगतान नहीं होगा।

'साहब, मैं अभी-अभी उस चेक के पाँच हजार रुपए देकर आ रहा हूँ।'

'ऐं!' मैनेजर ने कुछ निराशा से कहा।

उसने पीछे आदमी दौड़ाये, परन्तु चेक भुनानेवाला हाथ न आया। मैनेजर ने सर सुरेन्द्र और पुलिस को सूचित कर दिया।

सर सुरेन्द्र और चकराये।

'मीनाक्षी, वह चेक तो बदमाश भुना ले गया।' उन्होंने कहा।

'अच्छा!' बड़ी मुश्किल से इस बात में भाग लेती हुई मीनाक्षी बोली।



३

दावा प्रचंडवत विश्वनी ज्वाल माँही
वात्सल्यनी नजर कैं हरी ओ करीने
अश्रु अने स्मित तणां फुलडे भरेला
सौ प्रेमना चमन तृप्त थवाज राख्या

—कलापी *

चमेली का हृदय भर-भर आता था। रोने का उसे शौक न था; आँसू की माला गूँथने की उसे जरा भी सहूलियत न थी। आँसू देखने और आँसू पोंछनेवाला कोई हो तभी आँसू बहाने में सुख मिलता है। उसके आँसू कौन देखता ! कौन पोंछता ! संसार में उसका एक-मात्र किरीट ही साथी था। उस पर हँसती चमेली का बोझ ही कहाँ कम था कि उसके सिर पर आँसुओं का भार बढ़ाया जाता ! इसलिए किरीट के देखते वह कभी नहीं रोती।

यह जानते हुए भी कि किरीट अभी आ पहुँचेगा, आज उससे बिना रोये रहा न गया। हवा से दरवाजा हिलते ही रुदन को एकदम कंठ में रोध रखती। इस तरह वह दो-तीन बार रुकी। रात के दस

---

* दावा प्रचंडवत् विश्व की ज्वाल में
वात्सल्य दृष्टि कुछ हरि ने डारी है
अश्रु और स्मित पुष्पों भरे
प्रेमोद्यान सब अतृप्त ही रखे

बजे, ग्यारह बजे, बारह बजे, पर किरीट अभी तक नहीं आया। बहुत दिनों बाद चमेली को डर मालूम हुआ। एकान्त में खड़ा उसका छोटा-सा घर उसे आश्वासन न दे सका। घर की दीवारें, घर की खिड़की और घर का छप्पर भी उसे डरा रहे थे। नन्हें से हृदय में से उत्पन्न होनेवाला भय रूपी यह राक्षस पैदा होते ही सम्पूर्ण दृष्टि-मर्यादा में व्याप्त हो जाता है। चमेली ने आँखें मूँद लीं और झूले पर पड़े बड़े-से तकिये पर सिर रखकर सिसकने लगी।

दुनिया में कितने आँसू अनदेखे ही बह जाते हैं!

दर्वाजा खुला और चमेली एकदम उठ बैठी। घर में धन दौलत तो कुछ थी नहीं कि खिड़की-दरवाजे बन्द रखने पड़ते। एक दीया टिमटिमा रहा था। रुदन को एकदम रोक देना उसने सीखा था।

'चमेली, क्या जोर से नींद आ रही है?' किरीट ने भीतर प्रवेश-कर, खड़ी होती चमेली से पूछा।

'कैसे कहते हो?'

'तू आँखें जो मसल रही है!'

'क्या करूँ, भाई साहब! तुम तो बहुत देर से आते हो।'

'देख, मैं तुझे रोज कहता हूँ पर तू सुनती ही नहीं। मेरी प्रतीक्षा में क्यों बैठी रहती है? तू खा-पीकर सो जाया कर।'

'क्या खूब! ऐसा भी कभी हो सकता है? मैं खा लूँ और तुम थके-माँदे आकर ठण्डा-बासी अपने हाथ से खाओ! क्यों?'

'लेकिन मेरे आने का तो कोई ठिकाना नहीं और तुझे आधीरात तक बैठ रहना पड़े यह भी कहाँ तक ठीक है?'

'मुझे और काम ही क्या है?'

चमेली किरीट को एक साफ़ धुली हुई धोती देकर दूसरे छोटे कमरे की ओर जाने लगी। जाते-जाते दबा रखे रुदन की एक अवरुद्ध सिसकी किरीट को सुनाई दी। तकिये पर सिर रखे आराम करता हुआ

किरीट उठ बैठा। उसने कहा :

'चमेली !'

'क्या ?' थोड़ा-सा मुड़कर चमेली ने पूछा।

'तुझे क्या हुआ ?'

'कुछ तो नहीं। तुमसे किसने कहा ?'

'अभी तो तू ने सिसकी ली। कहीं तू रो तो नहीं रही थी ?'

'तुम्हे क्यों ऐसा लगता है ? मुझे तो कुछ भी नहीं हुआ !' किरीट के सामने आ चमेली ने हँसकर कहा।

चमेली हँसकर गई, परन्तु उसके हास्य में हँसी न थी ; मात्र हँसी की छाया थी। किरीट के मन में आज अनेकों विचार उठ रहे थे। इस घटना ने उसके विचारों को एक नई ही दिशा दी। तकिये पर कुहनी टेके हाथों पर सिर धरे, पाँवों से हलके-हलके झूले लेता, आँखें बन्द किये किरीट विचार-प्रवाहों में बहा जा रहा था। उसे भान ही न रहा कि इस तरह आँखें बन्द किये विचार करते-करते एक घण्टा हो गया है।

चौंककर उसने आँखें खोलीं तो चमेली को कमरे के दरवाजे पर खड़ी पाया।

'भोजन यहीं ले आऊँ ? तुम थक गये हो।' चमेली ने किरीट को जगा देखकर कहा।

'नहीं, नहीं ! मुझे वहाँ आते क्या होता है ?' किरीट खड़ा खूटी से लटक रही एक बिना बजती छोटी-सी घड़ी की ओर उसने देखा।

'ओहो ! मुझे आये घण्टा भर हो गया ? मुझे बुलाया क्यों नहीं ?' किरीट ने कहा।

'मैं चार बार तो आ गई। परन्तु तुम सो गये थे।'

किरीट की आँख में दया उमड़ आई। दया की भावना बह दिनों-

दिन भूलता जाता था। उसके विचार में मनुष्य दया किये जाने योग्य प्राणी नहीं था। शेर-चीतों के शिकार के बदले आदमियों का शिकार करना चाहिये--ऐसा वह मानता था। प्राचीन काल के सुल्तानों में से किसी-किसी में मनुष्यों के झुण्ड इकट्ठे करवाकर उन्हें तलवार से काट डालने का शौक़ होता था। यदि किरीट का बस चलता तो वह इस प्रथा को फिर से एक बड़े पैमाने पर चालू कर देता! मनुष्य में दया नहीं है इसलिए वह स्वयं भी दया का पात्र नहीं। मनुष्य को पैसा चाहिये इसलिए वह हर तरह से पैसा प्राप्त करता है। वह कभी यह नहीं सोचता कि ऐसा करने से दूसरे भिखारी हो जाते हैं। उसे अधिकार चाहिये और उसकी प्राप्ति के लिए अगणित आदमियों को कुचलकर भी वह उसे प्राप्त करता ही है। अनेक मानव बन्धुओं को भूखे रखकर प्राप्त किये हुए धन और अनेक निर्दोष जीवनों को नष्टकर मिली हुई सत्ता का फिर उपयोग भी क्या होता है? उस धन के नष्ट न होने और उत्तरोत्तर बढ़ते रहने की तृष्णा में वह समस्त मानव जाति को टुकड़े-टुकड़े के लिए मुहताज कर देता है; कहीं वह अधिकार छिन न जाय इस डर से वह समस्त मानव जाति के गले फाँसी दे देता है। सभी धन और अधिकार की आकांक्षा करते हैं और इसलिए आपस की लूट और मारकाट में मग्न रहते हैं। मनुष्य को दया की आवश्यकता ही क्या है?

फिर भी चमेली को देखकर दया की यह भावना कभी-कभी उसमें आ जाती थी। मरुस्थल का मृगजल मिथ्या होते हुए भी मन उसे देखना चाहता है। दया की यह मृगजल जैसी भावना जब-जब उसके हृदय में उत्पन्न होती किरीट उसे देखता रह जाता और तब हँस देता।

आज बिना कुछ बोले उसने भोजन कर लिया। चमेली क्षणभर भी चुप नहीं रह सकती थी; परन्तु आज वह भी मौन थी। किरीट फिर हिंडोले पर जा बैठा। बिना झूले के उसे क्षण-भर भी नहीं सुहाता

था। लकड़ी की एक सादा पटिया और उस पर सफेद गिलाफ का एक तकिया, बस झूले पर यही सुख-सामग्री थी। किरीट घर में होता तो चमेली भी उसी पर बैठती। गुजराती-जीवन की कितनी ही वेदनाएँ हिंडोले ने हलकी की हैं।

उसी कमरे में ज़मीन पर दूर-दूर दो बिस्तरे बिछे थे। दोनो बिस्तरों के पास एक-एक खुली खिड़की थी। चमेली ने दोनो बिस्तरे साफ किये, फिर एक बिस्तरे पर बैठकर वह खिड़की से बाहर देखने लगी। समस्त संसार काजल के-से काले अन्धकार में एकाकार हो गया था।

'चमेली, कब तक बैठ रहेगी? एक बज गया।' कुछ देर बाद किरीट ने कहा।

'मुझे आज नींद नहीं आती।'

'फिर भी जरा आराम कर।'

'तुम क्यों नहीं सोये?'

'तुझे यह सब फिक्र क्यों करनी चाहिये?'

यह प्रश्न चमेली को तीर की तरह लगा। सच, वह कौन! और किरीट कौन! क्यों उसे ऐसी अनावश्यक चिन्ता करनी चाहिये? और ऐसी चिन्ता करने का अधिकार ही उसे क्या है?

चमेली झट से बिस्तर पर सो गई। हाथ से उसने आँखें ढक लीं। किरीट बैठा-बैठा झूल रहा था। उसने फिर एक सिसकी सुनी। वह बोल उठा--चमेली!

चमेली ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह ऊँघ रही थी। किरीट फिर सोचने लगा:

'चमेली को आज क्या हो गया है?'

वह चमेली के बिस्तरे के पास गया। खिड़की में से ठंडी हवा आ रही थी। चमेली जग रही है या नहीं यह जानने के लिए उसने उसके कपाल पर हाथ रखा। कपाल गर्म था। उसने चमेली के हाथ

पर अपना हाथ रखकर देखा। हाथ ठंढा था। हवा से चमेली की देह शीतल हो गई थी। चमेली को सर्दी लगने लगी। उसके हाथ के रोएँ खड़े हो गये थे।

'लड़की ओढ़ती भी नहीं।' बड़बड़ाते हुए किरीट ने उसे एक पुरानी रजाई ओढ़ा दी। दूर किसी की घड़ी में दो बजे।

किरीट फिर झूले पर न बैठा। वह दरवाजे के सामने उसे खोल-कर खड़ा हो गया और थोड़ी देर बाद दरवाजे से बाहर निकल गया।

नींद का ढोंग करती चमेली को लगा कि बाहर के कमरे में तीन आदमी धीरे-धीरे बातें कर रहे हैं। बातें पाँच मिनट से अधिक न हुईं। किरीट वापिस आकर अपने बिस्तर पर सो गया।

चमेली ने एक लम्बी साँस ली। किरीट को विश्वास हुआ कि चमेली अभी से सो गई है।



४

बिना हेतु नाना जनहृदयनां चक्र फरतां,
बिना हेतु शाने दिल-दिल चीरे ने रडी मरे ?
बिना हेतु तो ना गति पण करे पर्ण सरखां,
बिना हेतु कांई कदि पण बने ना कुदरते ।*

— कलापी

सुबह दस बजे किरीट घर से निकल गया। किरीट कहाँ जाता है यह कई बार चमेली उससे पूछती ; परन्तु किरीट ने कभी उसे सीधा जवाब नहीं दिया। इधर कई दिनों से उसने किरीट से पूछना छोड़ दिया था। आज भी उसने कुछ न पूछा।

संसार में चमेली के माता-पिता जीवित थे। उसके भाई और अन्य सम्बन्धी अपना जीवन सुख-पूर्वक बिताते थे। चमेली को भूल जाने का उन्होंने महान् निश्चय कर लिया था। स्नेह की भी अवधि होती है। मनुष्य अपने मृत सम्बन्धी को कितना कम याद करता है ! सुखी आदमी से तो मृतक स्नेही की स्मृति का सामान्य दुःख भी सहा नहीं जाता। वह स्नेही के साथ ही उस दुःख को भी गाड़-जलाकर भूल

---

* हेतु बिना जनहृदय के लघु चक्र फिरते,
हेतु बिना क्यों दिल चीर दिलों को रो मरते ?
बिना हेतु तो गतिहीन रहते पर्ण भी,
हेतु बिना होता नहीं कभी कुछ भी प्रकृति में।

जाने का प्रयत्न करता है। इसी तरह यदि कोई स्नेही खो जाय या लम्बे समय के लिए विलग हो जाय तो हम उसे अपने हृदय से धकेल बाहर कर देते हैं या इससे भी अधिक क्रूर हो उसे अस्तित्वहीन मानने या मनवाने के लिए अपने हृदय को सिखाते हैं। स्वार्थी मनुष्य !

· ऐसा न हो तो चमेली को किरीट के साथ क्यों रहना पड़ता ? किरीट उसका न सगा था न सम्बन्धी !

यह विचार आते ही चमेली काँप उठी। समाज की इस व्यवस्था के अनुसार कि सगे-सम्बन्धी के सिवा नारी दूसरे के यहाँ रह ही नहीं सकती कल चमेली का मर्मान्तक अपमान हुआ था। उस अपमान ने उसे रातभर रुलाया था और अभी तक उसके डंक की वेदना कम न हुई थी। क्या सारा संसार अच्छा है ? अकेली चमेली ही बुरी है ? इसका क्या कारण है कि अमुक सम्बन्ध स्थापित हुए बिना स्त्री-पुरुष साथ-साथ रह ही नहीं सकते ? एकान्त में मनुष्य संयमशील रह ही नहीं पाता इसीलिए वह किरीट जैसे अविकारी पुरुष के साथ रहती है तो भी दुनिया को उसमें कालिमा ही दीख पड़ती है।

परन्तु इसके लिए दोषी जगत् है या चमेली ? कल की सभी घटनाएँ उसकी कल्पना में जाग्रत हो उठीं। बिना किसी अपराध के होते हुए भी सभ्य संसार द्वारा किये गये तिरस्कार की याद आते ही उसका घाव फिर कसक उठा।

मीनाक्षी ने अपने यहाँ स्त्री-समाज को निमन्त्रित किया था। चमेली अकेली रह जाती इसलिए उसका एकाकीपन दूर करने के लिए किरीट ने उसे स्त्री-समाज में दाखिल करवा दिया था। उस बात को अभी थोड़े ही दिन हुए थे। अँग्रेजी भाषा, संगीत, सिलाई, शिशुपालन आदि विषयों की इस समाज में थोड़ी-बहुत शिक्षा दी जाती थी। चमेली का संगीत की ओर अधिक झुकाव था। वह गाने-बजाने की ओर अधिक ध्यान देती थी। जब वह गाती तो सभी का ध्यान उसकी

ओर आकर्षित हो जाता था। समाज में पढ़ने आनेवाली युवतियों की वह शीघ्र ही प्रिय पात्री हो गई। उसका स्वभाव भी आनन्दी था और बात करते तो वह कभी थकती ही न थी।

सर सुरेन्द्र प्रधान नियुक्त हुए तो उनकी पत्नी को इस मौक़े पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करना ही चाहिये। स्त्री-समाज की वह प्रमुख थीं। प्रमुख और मूर्ति लगभग एक ही काम देते हैं—शोभा बढ़ाने का। प्रमुख की हैसियत से मीनाक्षी को कोई विशेष काम नहीं करना पड़ता था और न उन्हें कुछ विशेष काम करने की अभिलाषा ही थी। भाग्य में लिखा सब प्रकार का बड़प्पन वह बिना किसी उत्साह के भोग लेती थीं।

ऐसे समाजों में प्रौढ़ाओं और युवतियों का भेद भी सहज मालूम हो जाता है। एक खास उम्र होने के बाद, एक खास संख्या में बच्चे पैदा होने के बाद या पति को विशेष प्रकार का बड़प्पन मिलने के बाद महिलाओं के लिए सीखने या खेलने के लिए कुछ नहीं रह जाता। वे समाज की कम उम्र युवतियों को प्रोत्साहित करने और अपनी बढ़ती हुई शान पर आवश्यक अंकुश रखने के लिए ही समाज में उपस्थित होती हैं—कभी-कभी।

परन्तु ऐसे प्रसंगों पर उनकी उपस्थिति अनिवार्य है। अच्छी संख्या में महिलाएँ मीनाक्षी के यहाँ इकट्ठा हुईं। मीनाक्षी ने चमेली को पहले कभी देखा न था। उसका क्रीड़ा-चापल्य दूसरों से सहज जुदा दीख पड़ता था। मीनाक्षी की दृष्टि उसपर पड़ी। अभी तक बहुत-सी महिलाएँ चमेली को पहिचानती न थीं। कोई बहाना बनाकर मीनाक्षी ने चमेली को अपने पास बुलाया। समाज के मंत्री पद पर काम करने-वाली एक सुशिक्षित महिला से मीनाक्षी ने पूछा :

'यह बहिन तो अभी-अभी ही भर्ती हुई मालूम होती हैं, है न? कौन हैं यह?'

'इनका नाम चमेली बहिन है। वह किरीटकान्त कौन-सा पत्र

निकालते हैं ? मैं भूल गई—उनकी पत्नी हैं।'

चमेली परिचय करानेवाली स्त्री की ओर क्षण-भर देखती रही। फिर हँस पड़ी और बोली : 'मैं किरीटकान्त की पत्नी नहीं हूँ।'

'तो क्या किरीटकान्त तुम्हारे सगे हैं ?'

'वह मेरे सगे भी नहीं हैं।' चमेली ने कहा।

'संबंधी होंगे।' बहुत धीरे से एक महिला बोली। आसपास पाँच-सात सुननेवाली औरतें खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

यह दिखलाने के लिए कि पहले कही हुई बात कटाक्ष न थी अपितु सगे-सम्बंधी शब्द एक-दूसरे के पूरक हैं और उनका प्रयोग इसीलिए किया गया था, उस महिला ने फिर से कहा—

'बिना सगे-सम्बंधी हुए यह उनके पास रह सकती हैं ?'

और चमेली की हँसी उड़ गई। उस वाक्य में छिपा अर्थ वह समझ गई। सुननेवाली स्त्रियों की हँसी का कारण भी वह जान गई। सतियों की उस सभा में, उसे ऐसा लगा मानो वही एक अकेली असती सबसे दूर आ पड़ी है। सभी महिलाओं के पास नारीत्व की प्रतिष्ठा का यह या वह प्रमाण-पत्र था। कोई पत्नी थी, कोई पुत्री थी, कोई बहिन थी, कोई माता थी। प्रत्येक पर समाज द्वारा स्त्री के निश्चित किये गये सम्बंधों की छाप थी। अकेली चमेली ही ऐसे किसी प्रमाण-पत्र या छाप से वंचित थी। उसका और किरीटकान्त का क्या सम्बंध ? कौन-सा सगापन ? क्यों वह उसके साथ अकेली रहती थी ?

किरीट उसका मित्र था, शुभेच्छु था, पालक था। पर इससे क्या ? युवती स्त्री का कोई मित्र हो ही कैसे सकता है ? कोई शुभेच्छु हो तो वह अकेली युवती को अपने पास रख ही कैसे सकता है ? पति, पुत्र पिता या भाई के सिवा अन्य पुरुष को किसी युवती के पालनहार बनने का अधिकार ही क्या है ? इनके सिवा दूसरा कोई-सा भी सम्बन्ध अप्रतिष्ठित गिना जाना चाहिये। प्रकट रूप से उस सम्बन्ध को कोई नाम

भी नहीं दिया जा सकता। उसि सम्बन्ध का विचार भी नहीं कया जा सकता—कोई जान सके इस तरह।

चमेली को सारा मकान घूमता हुआ मालूम पड़ने लगा। सबकी आँखों में उसने तिरस्कार देखा। केवल थोड़ी देर पहले ही—जब सभी यह मानते थे कि वह किसी प्रतिष्ठित छापवाली स्त्री है—सबकी आँखें उसपर स्नेह और सद्भावनाओं की वृष्टि करती थीं। उसे फिर किसी ने बुलाया नहीं। उसके पास बैठकर फिर किसी ने बात भी नहीं की। उल्टे जो महिलाएँ उसके आसपास थीं वे वहाँ से उठकर दूर जा बैठीं। चमेली का मुँह उतर गया।

महा पवित्र ब्राह्मणों के झुण्ड में किसी अस्पृश्य शूद्र का प्रवेश पकड़ लिया जाय और सब, आज तक उसे छूकर अब एकाएक दूर हो, उसे उसकी शूद्रता का भान कराते हैं उसी तरह, चमेली को उसके अमान्य सम्बन्ध की शूद्रता का भान अन्य महिलाओं ने करा दिया।

वह उठी। उसने आस-पास देखा तक नहीं। वह एकाएक चल पड़ी। न उसे किसी ने रोका और न 'आना हो' कहकर विदा दी। झट-पट वह कमरे से बाहर हो गई। कमरे के बाहर सुन्दर कारीगरीवाली सीढ़ी को देखे बिना ही उसने उसपर पाँव रखा, और उसी समय उसके कन्धे पर किसी ने हाथ धरा।

चौंककर उसने पीछे देखा। मीनाक्षी ने उसके कन्धे पर अपना हाथ रहने दिया और बोली :

'क्यों बहिन, एकाएक चल दीं?'

'मेरा सिर दर्द करता है। मैं घर जाती हूँ।'

'मैं मोटर भेज देती हूँ।'

'नहीं जी, पैदल ही चली जाऊँगी।'

'तो...तुम किरीटकान्त के यहाँ रहती हो?' मीनाक्षी ने पूछा।

प्रश्न पूछे जाने के साथ ही चमेली की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। मीनाक्षी ने यह देखा और वह समझ गई। उसके ध्यान में आया कि यह प्रश्न इस तरह पूछकर उसने जलते में घी डाल दिया है। उसने प्रश्न का कारण स्पष्ट किया :

'मुझे किरीटकांत से मिलना है इसलिए पूछती हूँ। तुम रहती कहाँ हो?'

चमेली को आश्चर्य हुआ। मीनाक्षी जैसी वैभवशालिनी स्त्री किरीट जैसे गरीब आदमी से क्यों मिलना चाहती है? उसने अपने निवास-स्थान का पता दिया और पूछा :

'मैं उन्हें मिलने के लिए भेज दूँ?'

'नहीं। मैं ही आऊँगी।'

'ठीक।'

इतना कहकर वह नीचे उतरने लगी। उसने यह नहीं पूछा कि 'तुम कब आओगी?' अपमान से जल रही चमेली को चौंका देनेवाला दूसरा प्रसंग मिला। मीनाक्षी किस लिए आयेगी?

'आना हो!'

सीढ़ियाँ उतरते हुए उसने मीनाक्षी की आवाज़ सुनी। पीछे की ओर मुड़कर उसने हाथ के इशारे से जवाब दिया। ज़ीना उतरकर उसने पीछे देखा।

उसे एकटक देखती मीनाक्षी सीढ़ियों के सिरे पर खड़ी थी।

अपनी परिस्थिति का विचार करती हुई चमेली की आखों के आगे कल की सभी घटनाएँ प्रत्यक्ष हो उठीं। उस समय जिन छोटी-छोटी बातों की ओर उसका ध्यान नहीं गया था कल्पना की बदौलत अभी वे अपने सच्चे स्वरूप में दीख पड़ीं। इस अपमान का कारण क्या? उसका किरीट के साथ रहना समाज के लिए असह्य है। क्यों? बिना किसी सम्बन्ध के स्त्री-पुरुष साथ नहीं रह सकते ऐसा समाज का नियम

है। समाज को स्त्री-पुरुष पर विश्वास ही नहीं है।

परन्तु ऐसा करने में समाज की महत्ता है या हीनता? जो समाज अपने ही सदस्यों पर विश्वास नहीं कर सकता उसमें नियम बनाने की योग्यता है भी? और यदि वह नियम बनाये तो उन्हें तोड़ने में क्या कुछ पाप है?

एकाएक उसके विचार थम गये। घर के आगे एक मोटर आकर रुकी। चमेली ने उसमें से मीनाक्षी को उतरते देखा। चमेली खिड़की के पास खड़ी थी। उसे देखते ही मीनाक्षी ने घर में प्रवेश किया।

सारे घर की स्थावर जंगम सम्पत्ति बिकने पर भी मीनाक्षी के एक कपड़े की कीमत न होती---ऐसा उस घर का साजबाज था। चमेली किंकर्तव्यविमूढ़ हो रही। घर में दो कुर्सियाँ थीं। एक का एक पाँव टूट गया था। दूसरी की पीठ टूटने जैसी हो रही थी इसलिए वह दीवार के सहारे से हटाई नहीं जा सकती थी। एक पुरानी शतरंजी और फटी-टूटी चटाई—बस, यही घर में बिछाने के लिए थे। चमेली दुविधा में पड़ गई। लेडी मीनाक्षी जैसी माननीया महिला को बैठाने का साधन भी उस ढाई कमरोंवाले मकान में न था। भीलनी की झोंपड़ी में लक्ष्मी के पदार्पण पर जिस तरह भील कन्या उलझन में पड़ जाती है उसी तरह की उलझन का अनुभव चमेली ने किया। फुर्ती से एक चटाई बिछाकर चमेली ने मीनाक्षी का स्वागत किया :

'आओ! बहिन पधारो!'

हिंडोले ने चमेली की सहायता की। ऊँची बैठक पर बैठना मीनाक्षी के लिए स्वाभाविक ही था। मीनाक्षी हिंडोले पर जा बैठी और चमेली को भी पकड़कर अपने पास बैठा लिया। चमेली अत्यंत संकुचित हुई : कहीं उसका सादा ओढ़ना मीनाक्षी की कीमती साड़ी से छू न जाय!

'बिना खबर दिये ही चली आई हूँ।' मीनाक्षी ने कहा।

'तो क्या हो गया ? आपके चरण इस घर में कहाँ से ?' चमेली ने विवेकशीलता प्रकट की।

'अकेली ही हो ?'

'जी हाँ।'

'किरीट भाई नहीं हैं ?'

'नहीं। उनके आने-जाने का कुछ ठीक नहीं है।'

'ऐसा क्यों ?

'समाचार-पत्र निकालते हैं इसलिए समाचार-संग्रह, लिखने, छपवाने आदि में समय ही कहाँ मिलता है ?'

'उनसे कहोगी कि कल मुझसे मिल जायँ ? चारेक बजे।'

'हाँ। कहूँगी क्यों नहीं ?'

इतना कहकर चमेली उठी और अंदर जाने लगी। मीनाक्षी ने पूछा :

'उठती क्यों हो ? बैठो न ?'

'मैं अभी आई।'

'मुझे चाय-कॉफ़ी कुछ भी नहीं चाहिये। तुम मन में कुछ भी विचार न करना।'

चमेली किसी ऐसे ही विचार से भीतर जा रही थी। पकवानों से जिनका मन भर गया है ऐसे धनियों की खातिर काहे से की जाती ? चा-कॉफी का किरीट को व्यसन न था। चमेली को आदत थी पर अब वह भूल गई थी। फिर भी किरीट कभी-कभी चमेली को आग्रहपूर्वक चाय पिलाता था। परंतु अमीरों को खाली चाय कैसे दी जा सकती है ? खाने को कुछ तैयार था नहीं और मीनाक्षी को अकेली बैठा रख कुछ तैयार कर सकना भी सम्भव न था। घर में रखे एक नीबू पर चमेली की दृष्टि जा पड़ी। ज़रा-सी देर में उसने नीबू का शर्बत बनाकर

एक प्याला मीनाक्षी को दिया। मीनाक्षी ने शर्बत पीते हुए बातचीत फिर शुरू की :

'यह फ्रेंच तैयारी है ? बहुत स्वादिष्ट है।'

चमेली हँसी :

'नहीं तो, नीबू काटकर पानी में निचोड़ दिया है।'

'लेमन स्क्वाश ! मैं तुम्हें एक शीशी भेजूँगी।'

शर्बत पीते-पीते ही मीनाक्षी ने सारे घर को एक नजर देख लिया। बात करते-करते चमेली को भी अच्छी तरह से देखा।

'चमेली बहिन, तुम बहुत छोटी हो। अठारहवाँ साल होगा ?'

चमेली नीचे की ओर देखती हुई मुस्कराई और अकारण ही पाँव के अँगूठे पर हाथ का अँगूठा फेरती हुई बोली :

'नहीं तो। आपकी धारणा के प्रतिकूल मैं तो बहुत बड़ी हूँ। बाईस साल पूरे हुए।'

'मुझसे तो छोटी ही हो। मुझे अट्ठाइस पूरे हुए।'

मनुष्य को यौवन इतना प्यारा है कि वह अपनी उम्र की वृद्धि सह नहीं सकता। तीस साल बाद स्त्री और चालीस के बाद पुरुष अपनी-अपनी उम्र छिपाते हैं। युवाओं में भी यौवन को बढ़ाने की गुप्त लालसा होती है, इसलिए अठारह साल की सुन्दरी अपने मुँह से अपनी उम्र बाईस वर्ष न बतायेगी; और न तीस के लगभग आ पहुँची युवती इस बात को अपनी ओर से प्रकट करेगी।

फिर भी ये दोनो स्त्रियाँ एक-दूसरे के सामने प्रामाणिक बन रही थीं। क्यों ?

थोड़ी देर तक बातचीत करने के बाद मीनाक्षी उठ बैठी। जाते-जाते उसने पूछा :

'किरीट भाई की पत्नी यहाँ नहीं है ?'

'वह विवाहित हैं ? मुझे तो मालूम नहीं।'

'मुझे भी नहीं मालूम । मैंने तो यों ही पूछा है ।'

'आप उन्हें कहाँ से पहिचानती हैं ?'

'वह मेरे शिक्षक और मित्र थे । उन्हें अवश्य कहना कि मैं आई थी ; और हाँ यह कहना भी मत भूल जाना कि वे मुझसे मिल लें ।'



५

दीठां तहीं नवीन रङ्गीन दिव्य वारि ;
ने बिन्दु बिन्दु महीं भव्य प्रभाप्रवाह ;
दीठां तहीं छुपी रहेल गम्भीर भावो,
प्रत्येकमां नवीनता रसनी वहन्ती. *

हृदय असहिष्णु तो है ही। जिसे वह अपना कहता है—आत्मीय बनाता है—जो सदा-सर्वदा अपना ही बनाये रखने का प्रयत्न करता है। उसका सब कुछ अपना ही समझता है। यदि उसमें कोई थोड़ा-सा भी हिस्सा बँटाने आता है तो वह दुश्मन बन जाता है।

मीनाक्षी को यह जानने की क्या आवश्यकता थी कि किरीट विवाहित है या नहीं ? वह उसका मित्र और शिक्षक होता तो उसके विवाह की उसे (मीनाक्षी को) खबर हुए बिना रहती ? ऐसी प्रतिष्ठित स्त्री किस लिए किरीट जैसे ग़रीब आदमी से मिलने के लिए आई ? वह चिट्ठी भेज सकती है। आदमी भेज सकती है। चमेली कुछ भी समझ न सकी। वह उलझन में पड़ गई। हृदय की असहिष्णुता पति और पत्नी के सम्बन्ध को लेकर बहुत उग्रता से प्रकट होती है। परन्तु

---

* दीखा वहाँ नूतन रङ्गीन दिव्य वारि ;
और बिन्दु-बिन्दु में भव्य प्रभाप्रवाह ;
दीखे वहाँ सुगुप्त गम्भीर भाव,
प्रत्येक में नवीनता रस की बही थी।

दूसरे सम्बन्धों में भी उसका अस्तित्व तो रहता ही है। मित्रों के हृदय भी कह ही उठते हैं कि 'मेरे जितना दूसरे का हक़ न होना चाहिये।' बहुत दिनों से किरीट के निकट रहती हुई चमेली को किरीट के प्रति किसी अन्य स्त्री का अत्यधिक आत्मीयता प्रकट करना यदि असह्य लगा तो वह स्वाभाविक ही था।

हाँ, वह यह अवश्य जानती थी कि किरीट पर उसका कोई हक़ नहीं है। किरीट उसे घर से बाहर निकाल दे तो भी वह कुछ नहीं बोल सकती थी। जैसी वह किरीट की मित्र थी वैसी ही कोई अन्य स्त्री भी किरीट की मित्र क्यों नहीं हो सकती? किरीट ने जैसी उसको सहायता दी—और कई अन्य स्त्री पुरुषों को दी। वैसी ही सहायता उसने मीनाक्षी को भी दी हो तो क्या आश्चर्य?

तो भी उसे मीनाक्षी का मित्रता ताजी करने का प्रयत्न रुचा नहीं। उदारता मनुष्य की महानता है। परन्तु उदारता ममत्व का बलिदान करने पर ही आ सकती है। ममत्व प्राणों के समान प्यारा है। इस भावना का अनुभव किसे नहीं है कि मेरा है वह—मेरा रहकर ही—पूरा-पूरा मेरा रहकर—दूसरों का हो सकता है।

किरीट की पद-ध्वनि चमेली ने पहचानी। उसके विचार रुके। किरीट ही घर आया था। उसने पूछा :

'चमेली, क्या आज समाज में नहीं गई?'

'नहीं। अब मैं वहाँ कभी नहीं जाऊँगी।'

'क्यों? तुझे तो वहाँ बहुत सुहाता था।'

'वह मेरी भूल थी।'

'फिर यहाँ अकेले कैसे सुहायेगा?'

'समाज में अपमानित होने की अपेक्षा घर रहना क्या बुरा है?'

'कैसा अपमान? किसने किया?'

'किसी ने भी किया। अब किसी से मिलना ही नहीं तो फिर क्या।'

'ऐसा कहीं हो सकता है ? सबसे मिलने-जुलने की तुझे खास आवश्यकता है। तेरा विवाह होगा तो कुछ सहेलियाँ निमन्त्रित करनी पड़ेंगी न ?'

'मैं विवाह नहीं करूँगी।'

'ऐसे कितने दिन चल सकता है ? मेरा कुछ ठिकाना नहीं। कल से मुझे कहीं चल देना पड़े तो ?'

'इससे तो यूँ ही कहो न कि तू घर से निकल जा ! मुझे कहोगे उसी वक्त मैं चली जाऊँगी !'

'कहाँ चली जायेगी ?

'चूल्हे में !' चमेली की आवाज़ काँपी। उसकी आँखों में आँसू छलक आये। किरीट के चेहरे पर दया उमड़ आई। चमेली आँखें ढँककर भीतर गई और एक प्याले में शर्बत ले आई। उसे झूले पर रख दिया।

'क्या है ?' किरीट ने पूछा।

'शर्बत।'

'हम दोनो पियें।'

'मैंने पी लिया।'

'झूठी। तू नहीं पियेगी तो मैं भी नहीं पियूँगा।'

'मैं सच कहती हूँ। वह लेडी मीनाक्षी हैं न, वह तुमसे मिलने आई थीं। उसी समय हम दोनो ने पिया था।'

'क्या ! कौन आया था ?' किरीट ने चौंककर पूछा।

'लेडी मीनाक्षी। हाल ही जो मंत्री नियुक्त हुए हैं न, उनकी पत्नी।'

किरीट का चेहरा गम्भीर हो गया। प्याला हाथ का हाथ में ही रह गया। चमेली ने यह परिवर्तन देखा।

'क्यों, किस विचार में पड़ गये ? तुम मीनाक्षी को तो पहिचानते होगे।' चमेली ने पूछा। प्रश्न का उत्तर न देकर किरीट ने उसे दूसरी

बातों में लगाना चाहा।

'तू चाय पियेगी तभी मैं शर्बत पियूँगा।'

'न, भाई न! मुझे बिलकुल इच्छा नहीं है।'

'तो यह प्याला उठा ले जा।'

'तुम तो बेहद जिद्दी हो। फिर से सब तैयारी करनी पड़ेगी।'

'कोई हर्ज नहीं। अब तुझे अधिक मेहनती बनाना है।'

'क्यों?'

'फिर कहूँगा।' किरीट ने थोड़ा हँसकर कहा। किरीट जब कभी चमेली से उसके विवाह की बात करता तो ऐसे ही हँसता।

'आज इस तरह की सूचना दो बार क्यों की?' चमेली को आश्चर्य हुआ। सोचती हुई भीतर जाकर वह चाय बना लाई। उसके वापिस लौट आने की ओर किरीट का ध्यान ही न था। प्याले को हाथ में पकड़े निर्निमेष वह किसी खो गये दृश्य को देख रहा था। थोड़ी-थोड़ी देर में बन्द होती हुई पलकें भी उसे वह दृश्य देखने से रोक न सकती थीं। चमेली ने उसकी दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित किया।

'क्या सोच रहे हो इतनी तल्लीनता से? अब शर्बत पी जाओ! गर्म हो गया होगा।'

'हाँ-हाँ कहकर किरीट शर्बत पीने लगा।

'आज जल्दी कैसे आ गये?'

'मैं थक गया हूँ।'

'मैं जानती हूँ। आजकल तुम्हारा शरीर ठीक नहीं रहता। रात-रात भर जागते हो और दिन में कभी आराम भी नहीं करते।'

'मेरे भाग्य में आराम नहीं लिखा। आज रात को बाहर जाना पड़ेगा। वहाँ दो-तीन दिन लग जायँगे।'

'जाना स्थगित कर दो।'

'स्थगित नहीं किया जा सकता।'

'तो तुम्हें कहाँ राज्य लेना है ?'

'मुझे राज्य ही लेना है।' किरीट हँसा।

'देशी रियासत लोगे या अंग्रेजी ?' चमेली खिलखिला पड़ी।

'ये तो दोनों ही छोटे पड़ेंगे। मैं तो सारी दुनिया का राज्य लेने-वाला हूँ।'

'जब राजा बनोगे तो तुम्हें रानी भी चाहियेगी न ? रानी के बिना राजा बना ही नहीं जाता। उसे कहाँ से लाओगे ?' चमेली ने हँसते-हँसते पूछा। साथ ही वह किरीट के चेहरे पर के भावों का बारीकी से निरीक्षण कर रही थी।

'मेरा राज्य राजाओं के लिए नहीं, ग़रीबों के लिए होगा।'

'तब तो वह मेरा ही राज्य है। मुझसे अधिक और कौन ग़रीब है !' चमेली अभी तक हँस रही थी। परन्तु इस विनोद के गर्भ में छिपी निराश्रिता की तीव्र वेदना किरीट को उन वाक्यों में प्रत्यक्ष दीखी।

'अब तू चाय पियेगी या बातें ही करती रहेगी ?' किरीट ने उसे अधिक बोलने का मौक़ा न देते हुए कहा। थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद चमेली फिर बोली :

'पर तुम आज जा न सकोगे। मीनाक्षी ने तुम्हें कल बुलाया है।'

'मुझे बुलाया है ? तुमसे किसने कहा ?'

'मैंने तुमसे अभी कहा नहीं था कि वह यहाँ आई थीं ! तुमसे मिलने आई थीं और तुम मिले नहीं इसलिए कल तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगी।'

किरीट के चेहरे पर से मालूम होता था कि चमेली सच कहती है या झूठ यह उसकी समझ में न आ सका। थोड़ी देर तक किरीट कुछ भी न बोला। आज गये बिना उसका काम चल नहीं सकता था। वह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण काम में लगा था। पत्रकार का धन्धा तो उसने

अभी-अभी शुरू किया था ; परन्तु पत्र के सिवा भी उसे बहुत काम हैं ; इतना वह व्यस्त रहता था।

उसका आना-जाना बिलकुल अनियमित था। किसी दिन सुबह का गया वह रात को दो-तीन बजे लौटता। किसी दिन बिलकुल ही न जाता। और किसी दिन जाकर एक घण्टे में ही लौट आता ; परन्तु रोज दो बार तो वह अवश्य ही घर आता था। उसे एक चिन्ता लगी रहती। चमेली उसे खिलाये बिना भोजन नहीं करती थी। वह बहुत कहता परन्तु किरीट को खिलाये बिना चमेली के लिए भोजन करना असह्य था। अक्सर वह वापिस आने का समय बतला जाता था ; परन्तु उसका सध सकना असम्भव था। कई-कई बार उसे दो-तीन दिन तक के लिए बाहर भी जाना पड़ जाता था। उस समय चमेली अकेली ही रहती। अकेली रहने की उसे आदत पड़ गई थी। तो भी कोई अपरिचित या अर्ध परिचित व्यक्ति उसके समाचार पूछ जाते। किरीट के वापिस लौटने पर चमेली पूछती :

'तुम बाहर जाते हो तो दिन-भर कोई-न-कोई आकर मेरा समाचार पूछ जाता है। तुम रहते हो तो कोई भी क्यों नहीं आता ? तुम किस गड़बड़ में पड़े हो ?'

परन्तु किरीट कुछ भी उत्तर नहीं देता।

निस्सन्देह, चमेली अकेली रहती तब उसे बहुत बुरा लगता था। इस बार जब किरीट ने दो-तीन दिन के लिए बाहर जाने की बात कही तो उसे अच्छा न लगा। जरा देर बाद उसने पूछा :

'तो फिर आज नहीं जाओगे न ?'

'गये बिना चल ही नहीं सकता।'

'मीनाक्षी जो राह देखेगी ?'

'भले ही देखे।' चमेली द्वारा मीनाक्षी का नाम बार-बार लिये जाने की ओर अरुचि प्रकट करता हुआ किरीट ने उत्तर दिया।

'यदि यहाँ पुछवाया तो मैं क्या कहूँ ?'

'कह देना कि बाहर जाना पड़ गया।'

'अगर पुछवाया कि कब मिल सकेंगे तो ?'

'कहला देना कि अनुकूलता होने पर मिल सकूँगा।'

'बहुत बड़े आदमी हैं। तुम्हारे मिलने नहीं जाने से उन्होंने अपमान समझा तो ?'

'मुझे क्या परवाह ? मैं नहीं चाहता कि संसार में एक भी बड़ा आदमी रहे। संसार में से बड़े आदमी नष्ट हो जायँगे तभी संसार सुखी होगा।'

चमेली जानती थी कि किरीट के मन में बड़े आदमियों के प्रति अत्यन्त तिरस्कार है। लखपतियों को वह लुटेरे कहता, अधिकारियों को बदमाश गिनता और यह मानता था कि विद्वान् लोग संसार को भ्रम में डालनेवाले मदारी हैं, उसकी धारणा थी कि नेतागण संसार को गुलामी की जंजीर में जकड़ रखनेवाले राक्षस हैं। सबको जाँचने की उसके पास एक ही कसौटी थी : किसी ने भी संसार के गरीबों का सुख रत्ती भर भी बढ़ाया है ? इसका उत्तर जिस किसी के लिए भी नकारात्मक हो उसके मत में वह न केवल अनुपयोगी अपितु प्रत्यक्ष हानिकारक व्यक्ति था। हजारों रुपये जमा करनेवाले धनाधीश ने भर-पेट अन्न न पानेवाले करोड़ों मनुष्यों में से किसी एक का भी एक जून खाने का प्रबन्ध किया है ? अर्थशास्त्र के लच्छेदार शब्द भले ही धनियों को उपयोगी ठहरायें, संसार को—भूखे सोये संसार को—इन धनियों से कुछ भी लाभ नहीं। अधिकारी शासन करता है अपराधियों को दण्ड देता है, नियमों को कार्यान्वित कर शान्ति और व्यवस्था रखता है ; परन्तु अधिकारी का शासन गरीबों की अशांति और हाय-तोबा को शान्त करने के लिए क्या कर सका है ? अपराधी को वह भले ही दण्ड दे परन्तु उसके नियम-क़ानून क्या यह दावा कर सके हैं कि

अपराध करने की वृत्ति ही न होगी ? विद्वान् ने अनेकों ग्रन्थ लिखकर पाठकों की वाह-वाही पाई ; परन्तु क्या वह विद्वान् गरीबों का एक भी आँसू कम कर सका है ? जब तक ऐसा न हो उसे (विद्वान को) इन्द्रजाल रचनेवाले मदारी से श्रेष्ठ कैसे कहा जाय ? और नेता ? उसकी दृष्टि पदवी और कुर्सी पर ही लगी रहती है। वह सबसे ऊँचा रहना और दिखाना चाहता है। ग़रीबों को सदा ही धरती पर बैठानेवाला यह नेता ग़रीबों को आगे ला ही कैसे सकता है ? किरीट के मतानुसार तो नेता वही है जो लोप हो सके। ऐसा कौन सा नेता है जो जनता द्वारा भूले जाने की आकांक्षा रखता हो !

इस तरह एक भी बड़प्पन किरीट को नहीं सुहाता था। बड़प्पन मात्र का वह दुश्मन था। इसलिए मीनाक्षी के बड़प्पन के बारे में जब चमेली ने कहा तो उसे बिलकुल अच्छा न लगा।

मीनाक्षी के बड़प्पन से बेपरवाह किरीट फिर भी क्यों विचार-मग्न था ? चमेली दिन भर देखती रही कि किरीट किसी दूसरे ही विचार-प्रदेश में विहर रहा है। मीनाक्षी का वह मित्र था—शिक्षक था—मीनाक्षी ने स्वयं ही कहा था। किरीट से पूछकर इस बात का और भी निश्चय कर लेने को चमेली लालायित हो उठी। क्यों ? कौन जाने क्यों ? परन्तु रात में जब किरीट ने बाहर जाने की तैयारी की तो चमेली ने पूछ ही लिया :

'मीनाक्षी को तुम पहिचानते हो ?'

'हाँ।'

'कहाँ से ?'

'सर सुरेन्द्रलाल मेरे मित्र थे।'

'और मीनाक्षी ?'

'मीनाक्षी उनकी पत्नी है। तुझे क्यों आज मीनाक्षी की ही धुन लगी है ?'

'बड़ी भली हैं। बार-बार याद आती हैं। हैं न ?'

'जा जा। भली हों तो भी हमें क्या ? और बुरी हों तो भी हमें क्या ?'

'मैंने तो पहली बार ही देखा और मोहित हो गई।'

'उनके साथ रहना चाहती है ? मैं प्रबन्ध कर दूँ ?'

'ना मेरे बाप ! मैं तो यहीं भली। मुझसे अन्यत्र न रहा जायगा।'

'देख, मुझे तीनेक दिन लगेंगे। एकाध दिन और भी हो जाय तो घबराना मत। मधुकर यहाँ आता रहेगा। जो कुछ चाहिये उससे मँगवा लेना।'

'वह छैला ? ठीक। भले ही आये।'

जवाब सुनकर किरीट हँसा और वहाँ से चल दिया।

अन्धकार में जब तक वह अदृश्य न हो गया चमेली खिड़की में खड़ी देखती रही। उसे ऐसा आभास हुआ किरीट के साथ-साथ कोई दूसरा व्यक्ति भी चल रहा है।

'मीनाक्षी तो न हो ?' क्षणभर के लिए उसने सोचा। परन्तु मन में इस असम्भव कल्पना के आते ही वह हँसी।

'और हो भी तो मुझे क्या ? मैं कौन ?'



६

तु शुं करे ! डगमग्या गिरी मेरु जेवा !
खेंचाई जाय रवि त्यां ग्रह शुं विचारा ? *

—कलापी

किरीट के पत्र का नाम 'गरीब की हाय' था। थोड़े महीने हुए उसने एक पुराने परन्तु मरते हुए अखबार को मय सरो-सामान तथा छापेखाने के खरीद लिया था। उस पत्र का पुराना नाम बदलकर उसने उसका नाम 'गरीब की हाय' रखा। इस नाम में रसिकता न थी, संस्कृति न थी, शिष्टता न थी। यह नाम सुनकर शिष्ट समुदाय हँसने लगा। परन्तु किरीट कहता था कि यह पत्र रसिकों के लिए, संस्कृत लोगों के लिए, या शिष्टता का घमंड करनेवालों के लिए था ही नहीं। साधारण जनसमुदाय में बड़प्पन का भेद करनेवाले इन रसिक, संस्कृत और शिष्ट घमण्डियों को वह धनवानों के समान ही लोक-द्रोही मानता था और अपनी यह मान्यता उसने पत्र में नगाड़े की चोट प्रकाशित भी कर दी। इतनी खामियाँ होते हुए भी यह नाम ऐसा विचित्र था कि इसकी ओर एक प्रकार का स्वाभाविक खिंचाव होता था। 'गरीब की हाय' चिल्लाते हुए फेरीवाले को रोककर, वह क्या बेचता है यह जानने और खरीदने को, लोभ होना स्वाभाविक

---

* तू क्या करे ! डिग गये गिरि मेरु जैसे !
खिंच चला रवि जहाँ, ग्रह क्या बेचारे !

था और उसमें सामग्री भी ऐसी आती थी कि एक बार खरीदने के बाद सदा खरीदते रहने का मन होता था। उसमें प्रकाशित होनेवाली सब बातें सच न भी मानी जायँ तो भी वे आकर्षक तो होती ही थीं।

सम्पादक का सहायक मधुकर नाम का एक ग्रैजुएट था। धुनी और महत्त्वाकाँक्षी इस नवयुवक में सार्वजनिक सेवा-कार्य के प्रति दुर्दमनीय इच्छा थी सरकारी नौकरी की मर्यादाओं से वह परिचित हो गया था। प्रत्येक विद्यार्थी में समाचार-पत्र और सभाओं द्वारा जनसाधारण को वशीभूत करने की अस्पष्ट लालसा होती है; परन्तु अधिकांश विद्यार्थी सरकारी नौकरी के तेजोवलय से मोहित हो सार्वजनिक जीवन को तिलांजलि दे देते हैं। मधुकर को सरकारी नौकरी मोहित न कर सकी। पत्रकारित्व के धन्धे में सम्मिलित होने की उसकी इच्छा सफल हुई। किरीट ने जिस पत्र को खरीदा था मधुकर उसी में सहायक था। पुराने आदमियों में से अधिकांश को किरीट ने बहाल रखा। मधुकर को भी उसने सहायक रहने दिया। मधुकर ने भी अपने काम और बर्ताव से किरीट को सन्तुष्ट कर लिया।

इस भावनाशील युवक के मन में एक ऐसा विचार घर कर गया था कि वही दिखनौटा है। बेशक, काँच में अपना मुख निहारकर, अपने आपको बदसूरत माननेवाला आज तक कोई पैदा नहीं हुआ; फिर भी अपनी सुन्दरता की भावना को आठों पहर जागरूक रख अपने क्रियाकलापों को उसी के अनुकूल ढाँचे में ढालनेवाले युवकों की संख्या बिलकुल थोड़ी पर एकदम शून्य नहीं होती है। मधुकर सार्वजनिक जीवन के साथ सम्बन्धित होने से पोशाक तो सादी ही पहिनता था; परन्तु उसकी सादगी भी दूसरों से सहज जुदी दिखाई देती थी। यौवन सदा ही सुन्दर है। सुन्दर यौवन को अधिक सजाने का प्रयत्न केवल हँस देने की बात तो नहीं है। तो भी मधुकर के अति प्रिय साथी शीशे को देखकर और उसकी सहायता से अपने रूप-

सौन्दर्य की प्रतीति को सतत जाग्रत रखनेवाले मधुकर को देखकर, यदि कोई सहज स्मित करे तो इसमें कुछ भी विचित्रता नहीं है। उसकी मेज पर हमेशा शीशा रखा रहता था ; शीशे में देखे बिना वह जल्दी से लिख ही नहीं सकता था।

मधुकर चमेली को पहिचानता था। दो-चार बार किरीट को लगातार बाहर गाँव में रहना आवश्यक हुआ तो उसने मधुकर को चमेली की देख-रेख का भार सौंपा था। सुन्दरियों का काम करने के लिए—सुन्दरियों के आगे काम करने के लिए—युवक सदा आतुर रहते हैं। नारी-विभाग में सेवा करने के अवसर पर नये स्वयंसेवक में एक अनोखा उत्साह आ जाता है। श्रोताओं में स्त्रियों की अच्छी उपस्थिति होने पर युवक व्याख्याता को गजब की प्रेरणा मिलती है। रेलगाड़ी की थका देनेवाली यात्रा में किसी सुन्दरी के मुख-दर्शन के सौभाग्य से थकान के उतर जाने का अनुभव सर्व-विदित है। हमारे कवियों द्वारा अमरता पाये, परन्तु अब कुछ प्राचीन हो गये पनघटों में, प्राण संचार करनेवाली भी सुन्दरियाँ ही हैं। स्त्री-पुरुष के पारस्परिक आकर्षण का व्यापक स्वरूप हँसकर टाल देने की चीज़ नहीं है ; हँस देने से वह अदृश्य हो भी नहीं जाता। चमेली से मिलने का प्रसंग प्राप्त होने से सुन्दर मधुकर का आनन्दित होना स्वाभाविक ही था। अकेली चमेली की देख-रेख का भार अकेले मधुकर को सौंपने में किरीट का क्या उद्देश्य था उसे तो किरीट ही जाने। मधुकर तो किरीट के कथनानुसार सवेरे ही चमेली से मिलने गया। 'गरीब की हाय' का ताजा अंक उसके हाथ में ही था।

'आओ भाई ! इतने सवेरे किधर से ?' चमेली ने मधुकर के आते ही पूछा।

'किरीट भाई नहीं हैं इसलिए मैं आया। मुझसे कह गये हैं।' यह मानने-मनवाने में कि मन-भावनी बात दूसरों के कहने से ही होती है,

हृदय की सच्ची आवाज़ अच्छी तरह गड़बड़ाई जा सकती है।

'बहुत दिनों में आये! हाथ में ये कौन-से कागज़ हैं?'

'आज का अंक है।'

'समाचार क्या है? छोटी बातों को बढ़ाना और बड़ी बातों को ज़रा-सा करना तो तुम्हारा काम ठहरा।' चमेली ने पत्रकार की नीतिपर टीका की।

'हमेशा ऐसा थोड़ा ही होता है।'

'सब ऐसा ही होता है। बताओ, आज क्या पढ़ने जैसा है?'

'परसों रात को एक बहुत ही चौंका देनेवाली घटना घटी है।'

'मोटर के नीचे कुत्ता आ गया होगा या कोई मेम गुब्बारे में दस हाथ ऊँची उड़ी होगी।'

'हम ऐसे ही समाचार छापते होंगे, क्यों?'

'नहीं तो और क्या? धारा-सभा में किसी ने भाषण किया होगा, या अमेरिका के राष्ट्रपति ने किसी को दावत दी होगी।'

'तुम्हारे मन इन सबकी कुछ भी कीमत नहीं। खैर; परन्तु आज का समाचार तो विशेष रूप से जानने योग्य है।'

'क्या है? भारत को स्वराज्य तो नहीं मिल गया?'

'नहीं नहीं। सर सुरेन्द्र के यहाँ परसों रात को पाँच हजार रुपए की चोरी हो गई। चोरी भी कैसे कही जाय लुटेरे ने पिस्तौल बतलाकर उनसे पाँच हजार का एक चेक लिखवा लियो।'

'अच्छा? मुझे तो पता ही न लगा।'

'तुम्हें कैसे पता लगता?'

'लेडी मीनाक्षी स्वयं यहाँ आई थीं, परन्तु मुझसे तो कुछ नहीं कहा।'

'मज़ाक करती हो। लेडी मीनाक्षी यहाँ क्यों आएँगी?'

'यह मेरी भी समझ में नहीं आता। किरीटकान्त से मिलने आई

थीं ; परन्तु भेंट न हुई।'

'इसी सिलसिले में आई होंगी।'

'उस दिन तीसरे पहर में उनके यहाँ सम्मेलन में गई थी, वहीं उन्होंने मुझसे कहा था कि वह किरीटकान्त से मिलने आएँगी। चोरी तो रात में हुई बतलाते हो न !'

'तो फिर किस लिए मिलने आई होंगी ?'

'मैं स्वयं भी जानना चाहती हूँ। लाओ, देखूँ तुम्हारे पत्र में क्या लिखा है ?'

मधुकर ने चमेली को समाचार-पत्र दिया। चमेली पढ़ने लगी। मधुकर की आँखें चमेली के चेहरे की ओर देखती हुई वहीं स्थिर हो गईं। उसे ध्यान ही न रहा कि वह चमेली के चेहरे को निर्निमेष देख रहा है। विचार-विनिमय की कोई गहन प्रक्रिया सतत चलती रहती है। बिना आँखें उठाये ही चमेली जान गई कि मधुकर की आँखें उसके चेहरे पर स्थिर हो गई हैं। थोड़ी देर तक चमेली पढ़ती रही। फिर पत्र पर से दृष्टि हटाकर मधुकर की ओर देखा। मधुकर ने हकबका कर अपनी निगाह एकदम हटा ली। वह लजा गया। यौवन-काल की प्रारम्भिक नवीन रसिकता की प्रबल लहरें जोर-शोर से मर्यादा के किनारे आ-आकर टकराती हैं। परन्तु उस किनारे के टूटते ही—टूटने की संभावना होते ही—वे लहरें उसी वेग से वापिस ह ँ जाती हैं ; रसिकता लज्जित हो जाती है, यही यौवन की विशुद्धता है। स्थिर और दृढ़ होते हुए भी मर्यादा के किनारे ढाने की यौवन को आदत पड़ जाती है। लज्जा उसमें से अदृश्य होने लगती है—यह यौवन की कठोरता—निष्ठुरता है। पचीस वर्ष के युवक की अपेक्षा पैंतीस वर्ष का प्रौढ़ अधिक बेशर्म होता है। मधुकर अभी पूरे पचीस वर्ष का भी न हो पाया था। वह लज्जित हो गया। इस सुन्दर युवक से चमेली को सहानुभूति हुई। पुरुषों की वासना-लोलुप दृष्टि से वह इतनी

परिचित हो गई थी कि दोषहीन क्षणिक अमर्यादा उसे स्वाभाविक लगी। उसने पूछा :

'मधुकर, क्या देख रहे थे ?'

'यह...यह तो तुम अग्रलेख पढ़ रही थीं न, वह तुम्हें कैसा लगा, यह देख रहा था। क्या वह तुम्हें विचित्र नहीं लगा ?'

'यह किसने लिखा है ! तुमने ?'

'नहीं। किरीट भाई ने।'

'बिलकुल विचित्र है। इस तरह पैसे लूट ले जानेवाले लुटेरे का यों खुले आम बचाव करना तो बड़ी भयंकर बात है।'

'हमारे पत्र की यही विशेषता है। इसी विशेषता के कारण जनता द्वारा यह बहुत पढ़ा जाता है।'

सचमुच, किरीट ने पत्र के अग्रलेख में सर सुरेन्द्र के यहाँ की डकैती को सकारण माना था। 'हिन्दुस्तान को नये सुधारों से क्या मिला ! नये गवर्नर, नये प्रधान और कौड़ीभर धारा-सभा के सदस्य ! लेफ्टिनेण्ट गवर्नर द्वारा संचालित प्रान्तीय शासन को प्रतिष्ठित करने के लिए गवर्नर नियुक्त किये गये। दो-तीन गोरों द्वारा चलाये जानेवाले राजकीय कार-बार में मोटी तनख्वाहों वाले दो-तीन काले मंत्री बढ़ा दिये गये, मानो पहले की धारा-सभाओं में होनेवाली बकबक कम पड़ती हो इसलिए बाहर घूमते शब्द शूरों को सैकड़ों की तादाद में धारा सभा के अखाड़े में दाखिल कर दिया गया और उनके भत्ते का लम्बा-चौड़ा खर्च प्रजा के सिर पर लाद दिया गया ; परन्तु प्रजा की गरीबी मिटाने, गरीबों का सुख बढ़ाने, शासन का बोझा कम करने के लिए कौन-सा क़दम उठाया गया ! देश की दरिद्रता बढ़ानेवाले इन सफेद हाथियों को मिलती भारी रातिब में से किसी भूखों मरते साहसी ने पाँच हजार रुपए छीन लिये तो कौन-सा अपराध हो गया ! इससे प्रधान भूखों नहीं मर जायगा, उल्टे किसी भूखों मरनेवाले परिवार को

आजीवन रोटी मिला करेगी। धनवान को यदि गरीब लूट लें तो इसमें कुछ भी अपराध नहीं होता। वास्तव में तो सरकार को गरीब की गरीबी क़ायम रखने, या बढ़ानेवाले धनिकों को अपराधी मानना चाहिये। अपराधी को पकड़कर उसे दण्ड देने का प्रयत्न करने की अपेक्षा ग़रीबों का अस्तित्व अमर रखनेवाली आर्थिक अव्यवस्था के प्रेरक तथा चालक धनवानों और उनके लिए स्थापित सरकारों को सज़ा देना अधिक न्यायसंगत है।'

इसी आशय का वह अग्रलेख अतिशय जोरदार भाषा में हृदय को उत्तेजित करनेवाले ढंग से लिखा गया था।

'न जाने यह क्या पागलपन है!' चमेली अग्रलेख की विचित्रता देखकर बोली, पर तुम कहते हो कि लोग इस पत्र को बहुत पढ़ते हैं तो तुम्हारी आमदनी भी अधिक ही होती होगी!'

'हाँ, हाँ; परन्तु आमदनी बढ़ने के साथ ही किरीट भाई इसका वार्षिक मूल्य घटाने की सोच रहे हैं।'

'तब तो उनके सहयोगियों में से किसी को भी पैसा नहीं मिलने का।'

'नहीं।'

'तो फिर मीनाक्षी के साथ उनकी मैत्री कैसी?'

'उनके मित्र तो हम ही हैं। दूसरे मित्रों की जानकारी मुझे है भी नहीं।'

'तुम खोज न करो।'

युवती के आर्जव में मान भूले युवक को ख़याल ही न रहा कि वह अपने नेता के विरुद्ध छिपे तौर से जाँच-पड़ताल करने की स्वीकृति दे रहा है। मधुकर ने स्वीकृति दी। चमेली ने तरकीब बतलाई:

'देखो, तुम लेडी मीनाक्षी से मिलो और कहो कि किरीटकान्त को ख़बर दी तो गई थी, परन्तु वह आज मिलने न आ सकेंगे। यह

समाचार ले जाने पर मीनाक्षी तुमसे तुरन्त ही मिलेंगी।'

'उसके लिए चिन्ता मत करो। ऐसा कोई नहीं है जो पत्रकारों से न मिले।

'इसकी खबर तो दोगे न कि मुलाकात में क्या हुआ?

'अवश्य, शाम को फिर आऊँगा।'

'मैं तुम्हें व्यर्थ ही कष्ट देती हूँ।' कोई काम करवाना हो तो काम करनेवाले के प्रति काम सौंपने के बाद अतिशय चिन्ता व्यक्त करनी चाहिये। चमेली ने यही ढंग अपनाया।

'इसमें क्या?' चमेली के आगे मोहित हो गये मधुकर ने कहा।

थोड़ी देर तक इधर-उधर की बातें कर मधुकर गया। उसके जाने के बाद चमेली अनायास ही बोल उठी:

'बेचारा!'

७

अेक दीवडो दीपे दीपे मींचायरे,
पाणीडां हेले चड्यां, हेले चड्यां ।*

— न्हानालाल

लेडी मीनाक्षी तै नहीं कर पा रही थीं कि वह आज कौन से कपड़े पहिनें। कपड़ों की उन्हें कमी न थी। उनके पास इतने कपड़े थे कि यदि हर पाँच मिनट बाद एक-एक कपड़ा बदलतीं तो भी चौबीसों घण्टे लगातार नये कपड़े पहिन सकती थीं। फिर कपड़े पसन्द करने के बारे में आज इतनी उद्विग्नता क्यों ?

बहुमूल्य वस्त्रों की ओर उन्होंने आँख भी न उठाई। वह एक सादा कपड़ा चाहती थीं। एक के बाद एक सादे कपड़े निकालकर वह देखने लगीं। तीसेक सादे कपड़े निकाले ; पर एक भी पसन्द न आया। क्या घर में एक भी सादा कपड़ा नहीं है ! उन्हें शंका हुई। और धनवानों की सादगी भी क्या सादगी ही है ?

समय हो रहा था। तीन बजे मीनाक्षी सच ही अकुला गईं। एक क्षण-भर के लिए वह समझीं कि उनके घर में सब कुछ था ; एक-मात्र सादगी ही नहीं थी। अन्त में साहसकर उन्होंने एक कपड़ा खींच लिया। खुलने पर सफेद और घड़ी करने पर पीले लगते कपड़े

---

* एक दीया टिमटिमाता है और बुझता है ; पानी में लहरों पर लहरें उठने लगी हैं।

के जोड़ के दूसरे उपवस्त्र निकाले। आदमकद शीशे के सामने खड़ी हो वह झट-झट कपड़े पहिनने लगी।

आज मीनाक्षी की समझ में आया कि परिधान की भी एक कला है, और वह बहुत ही कष्ट-साध्य है। कपड़ा पसन्द करने की कठिनाई से भी पसन्द किये हुए कपड़े को उचित रीति से पहिनना कहीं कठिन है। यह मीनाक्षी की समझ में आज ही आया कि परिधान-कला में, देह को ढँकने और ढँककर उसे सुन्दर बनाने के उद्देश्य की पूर्ति में, इतनी बुद्धि की आवश्यकता होती है। पौने चार बज गये तो भी एक पल्ला इच्छानुसार ढँक नहीं रहा था।

'मुँह जला! क्या जाने क्यों आज यह ऐसा हो रहा है! कपड़े पहिनना कहीं नये सिरे से तो नहीं सीखना पड़ेगा!'

गवर्नर और उनकी पत्नी का आमन्त्रण स्वीकार कर मीनाक्षी उनके यहाँ दो-चार बार हो आई थी। उस वक्त पहिने हुए कीमती वस्त्रों ने आज की जितनी उलझन पैदा न की थी। एक सादी पोशाक पहिनने में घण्टा-भर लग जाना कितना आश्चर्यजनक है!

जल्दी-जल्दी उसने वह पल्ला जैसे-तैसे टाँक लिया। सिर पर ओढ़ा हुआ हिस्सा दो-तीन बार फिराया। एक बार माँग टेढ़ी हो गई; दूसरी बार कपाल पर बाल आ गये। चार की घण्टी बजी; उसके हृदय में भी ऐसी ही घण्टी बज उठी। घड़ी की तरह हृदय भी चुपचाप अपना काम करता है। उसकी ओर ध्यान न हो तो उसके अस्तित्व का खयाल ही नहीं रहता। सिर्फ कभी-कभी वह जोर से धड़ककर भुलक्कड़ मनुष्य को याद दिला देता है कि उसकी छाती में हृदय जैसा कुछ है।

मीनाक्षी कुर्सी पर बैठ गई। शीशा उसके सामने ही था। वह नित्य-प्रति शीशे में अपना मुँह देखती थी; परन्तु शीशा और मुँह दोनों ही उसे एक से—अनाकर्षक—लगते थे। आज उसने रसपूर्वक आरसी में देखा। उसे अपना मुँह सुहावना लगा। उसने एक तसवीर

की ओर देखा। तसवीर उसी की थी। वह निरीक्षण करने लगी कि आज के चेहरे में और दस वर्ष पहले के चेहरे में कितना परिवर्तन हुआ है! तसवीरवाला चेहरा बहुत ही छोटा था। सौन्दर्य खिलने का उसमें आरम्भ हो रहा था। शीशे में दीखता चेहरा परिपूर्ण—विकास-मय लगा; मानो सौंदर्य उसमें पूरी तरह से भर गया हो!

नौकरानी ने तश्तरी में रखा हुआ एक कार्ड आगे करके खबर दी:

'एक सज्जन आप से मिलने आये हैं।'

वह तत्काल खड़ी हो गई। जल्दी से अपनी सादी (पतली जूतियाँ) पहन लीं। उसने यह भी नहीं पूछा कि कौन मिलने आया है। उसके पाँवों में चैतन्य बह रहा था, तो भी मुलाक़ातवाले कमरे का आधा दरवाज़ा खोलकर वह रुक गई। उसका हृदय इतने ज़ोर से धड़क उठा कि दर्द हो आया। उसे छाती पर हाथ रखना पड़ा। दूसरे ही क्षण उसने दरवाज़ा खोला।

दरवाज़ा खोलकर भीतर क़दम बढ़ाते ही उसके हाथ-पाँव शिथिल हो गये। उसके शरीर में से स्फूर्ति निकल गई। उसे डर लगा कि कहीं वह गिर न पड़े। वह तै न कर सकी कि आगे बढ़े या पीछे हट जाय।

उसे देखकर कुर्सी पर बैठा हुआ एक आदमी खड़ा हो गया। मीनाक्षी ने उसे अच्छी तरह से देखा। सुन्दर, मोहक नवयुवक की मूर्ति उसे दीखी। उसमें कुछ भी कमी न थी, परन्तु वह किरीट न था। मीनाक्षी तो किरीट से मिलने आई थी। किरीट के स्थान पर कामदेव का आना भी कहाँ से अच्छा लगता!

हृदय की धड़कन बन्द हो गई। धड़कन रही भी हो तो मीनाक्षी को अब उसकी खबर नहीं रह गई थी। अपनी चेतनाहीन देह को बड़े परिश्रमपूर्वक मीनाक्षी ने आगे धकेला। उस सुन्दर युवक के पास आकर उसने पूछा:

'कहाँ से आये हो?'

'मैं समाचार-पत्र का प्रतिनिधि हूँ।'

'परन्तु मैं प्रतिनिधियों से नहीं मिला करती।'

'मैंने अपने कार्ड में स्पष्ट कर दिया था कि मैं प्रतिनिधि हूँ।'

मीनाक्षी को अब अपनी भूल समझ में आई। यह मानकर कि उससे मिलने आनेवाला किरीट ही है उसने कार्ड देखना अनावश्यक समझा। अब आगन्तुक को बिना उससे मिले वापिस भी नहीं किया जा सकता था। उसने पूछा :

'तुम्हारे पत्र का नाम ?'

'ग़रीब की हाय।'

मीनाक्षी ने मन में सोचा :

'धनवानों की हाय नहीं हो सकती ?'

परन्तु इस विचार को मन में ही दाबे रख उसने पूछा :

'यह नाम तो मैंने सुना है। कहिये, आप मुझसे किस लिए मिलने आये ?'

'सर सुरेन्द्रलाल मंत्री नियुक्त हुए हैं। उनकी राजनीति के निर्माण में क्या आप भी कुछ करेंगी ?'

'नहीं भाई ! वह अपना मन्त्रित्व करें। मैं मंत्री नहीं हूँ। मुझे कुछ भी नहीं करना है।'

'आपके यहाँ दो दिन पहिले जो चोरी हुई उसके सम्बन्ध में कुछ बतला सकेंगी ?'

'मैं क्या जानूँ ? पुलिस खोज कर रही है।'

प्रतिनिधि को लगा कि उसकी वाचालता या उसका दिखलावा यहाँ कुछ भी प्रभाव नहीं रखते। उसने बातचीत का रुख बदला :

'आपने हमारे संचालक को बुलाया था इसलिए मैंने सोचा कि आप इस विषय पर कुछ प्रकाश डालेंगी, परन्तु आप तो कुछ भी नहीं कहती हैं।'

'मैंने किसी भी संचालक को नहीं बुलाया।'

'मुझे क्षमा कीजिये। मैं उनका सन्देशा आपसे कहने आया हूँ। उनका ऐसा ख्याल था कि आपने उन्हें आज चार बजे बुलाया था, परन्तु वह नहीं आ सकते थे इसलिए मैं आया।'

'तुम्हारे संचालक का नाम क्या है?' कुछ सोचते हुए मीनाक्षी ने पूछा।

'किरीटकान्त।'

'हाँ-हाँ। मैंने उन्हें अवश्य बुलाया था, परन्तु पत्र में देने के लिए कोई बात नहीं थी। वह क्यों नहीं आये?'

'आवश्यक काम से उन्हें बाहर जाना पड़ गया है।'

'वापिस कब आयेंगे?'

'दो दिन में।'

'ठीक।'

मीनाक्षी और कुछ न बोली। प्रतिनिधि बैठा रहा। उसे भी जिज्ञासा हुई कि किरीट को उसके संचालक पद से विलगकर मीनाक्षी ने क्यों बुलाया था? मधुकर को ऐसा नहीं मालूम हुआ कि उसके सौंदर्य का कुछ भी असर लेडी मीनाक्षी पर हुआ हो। उसने बातचीत का सिलसिला आगे बढ़ाया।

'किरीटकान्त से कुछ कहना है?' उसने पूछा।

'नहीं। तुम्हारा नाम?'

'मधुकर।'

फिर दोनों चुप हो गये। मधुकर ने अब अधिक बैठना अनावश्यक समझा। इतने परिचय से तो जीवन भर का परिचय खड़ा किया जा सकता है।

'मैं विदा चाहता हूँ।

'अच्छा भाई; जाओगे क्या?...चमेली यहीं है या किरीट भाई

के साथ गईं ?'

'वह तो यहीं हैं। उनसे कुछ कहना है ? मैं वहीं आ रहा हूँ।'

'नहीं, मैंने तो योंही पूछा।

मीनाक्षी के चेहरे पर सहज सन्तोष छा गया। मधुकर को अब उसने अच्छी तरह देखा। मीनाक्षी को विश्वास हुआ कि युवक आकर्षक है। इस विचार से कि चमेली को ऐसा आकर्षक युवक प्राप्त होनेवाला है उसे सन्तोष क्यों हुआ होगा ?

'हम फिर कभी मिलेंगे।' विदा होते हुए मधुकर से मीनाक्षी ने कहा। मधुकर को भी सन्तोष हुआ। उसका सौन्दर्य यहाँ भी एकदम अस्वीकृत नहीं हुआ।

अकेली रह गई मीनाक्षी अपने कमरे में लौट आई। वह अत्यन्त उदासीन हो गई। चारों ओर बिखरे हुए सुख और आनन्द के साधनों में से एक भी उसके हृदय में प्रवेश न कर सका। अपने शीथिल शरीर को उसने एक सोफे पर गिरा दिया। अचानक ही उसने दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखा। शिथिल भावना से उसने अपनी आकृति देखी और मुँह बिचकाया। अपनी ही सुन्दर शरीर उसे अच्छा न लगा क्यों ?

वह सोचने लगी—विचारों का क्या वर्तमान काल के साथ भी कोई सम्बन्ध है ? यदि है तो वह कभी समझ में भी आया है ? वर्तमान के पंखों पर उड़नेवाला विचार पीछे की ओर देखता है या आगे की ओर ! विचारों में बीते हुए भूत-काल और भोगे जानेवाले भविष्य काल का ही अस्तित्व रहता है। वर्तमान से उसका कोई परिचय नहीं मालूम होता।

मीनाक्षी के विचारों ने पीछे की ओर दृष्टि डाली। वह फिर से भूत-काल में जीने लगी। वर्तमान बिलकुल अदृश्य हो गया। किसी दृश्य ने उसे सुख पहुँचाया ; किसी दृश्य ने विषाद पहुँचाया। रस-पूर्ण नाटक

अनेक बार देखने का अवसर मिलने पर भी नाटक के प्रेमियों को उसमें एक-सा ही मजा आता है। तल्लीन होकर वह अपने सम्पूर्ण विगत जीवन को देखने लगी।

उसके चेहरे पर कुछ क्षणों के लिए मुसकराहट छा गई। सामने के दर्पण ने बिना समझे नकल की। बिना समझे ! दर्पण जैसी स्पष्ट समझदारी किसी और में होती भी है ! जो हो ! दर्पण में बैठी मीनाक्षी तत्क्षण मुसकराई।

उसे मीनाक्षी ने तो नहीं देखा, परन्तु जिसने देखा उसे बहुत भला लगा।

'ओहो ! आज तो सब कुछ अलबेला हो रहा है ! मैं तो भूल ही गया था कि तू इतनी सुन्दर है।' सर सुरेन्द्र ने दर्पण में प्रतिबिम्बित मीनाक्षी की मुसकराहट और वेश-भूषा देखकर कहा।

मीनाक्षी ज़रा अस्थिर हुई। उसकी मुसकराहट उड़ गई। उसके भूतकाल के किसी मन-पसंद प्रसंग पर एकाएक पर्दा पड़ गया। उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

सर सुरेन्द्र मंत्री-पद का सब गौरव भूल गये। वह पत्नी की बगल में जा बैठे। पत्नी के गोरे कपाल पर आ रही बाल की एक लट को उन्होंने जरा हटाया। और...और...मंत्रियों की गम्भीरता को घटानेवाला एक पामर प्रयोग वह कर बैठे। उन्होंने मीनाक्षी के कपोल का चुम्बन किया।

मीनाक्षी ने अपने गाल पर हाथ फिराकर चुम्बन पोंछ डाला। वह कह न सकी कि आज का सौंदर्य सर सुरेन्द्र के लिए नहीं है।



८

राजा किंवड़िया खोल !
रस की बूँद झरे !

—लोकगीत

एक था राजा ! और उसकी दो रानियाँ थी ; एक मानीती और दूसरी अनमानीती !

प्राचीन काल में राजा लोग रानियों के मामले में बिलकुल कंजूस न थे । कहानियों में तो अकसर राजा की सात रानियाँ होने की बात है । कितने ही राजा तो ऐसे भले होते थे कि उनकी छः रानियाँ मानीती और एक ही अनमानीती होती थी । लेकिन वे सब पहले के राजा थे । जैसे-जैसे कलियुग बढ़ता गया राजा रानियों की संख्या कम करते गये । इसलिए यदि कोई कहे कि एक राजा के दो रानियाँ थीं तो आज भी राजा अपना अपमान नहीं समझेंगे ।

पुरुष मात्र में राजा का अंश होता है । पुरुष को युद्ध करने पड़ते हैं , आत्म-रक्षा और पर-पराजय की बाजियाँ लगानी होती हैं ; आत्मीयजनों का पोषण और भाइयों को आश्रय देना होता है, पौरुष पराक्रम-सूचक शब्द है । पुरुष अहंकार से सिर ऊँचा रखे, और छाती निकाले राजा की तरह चलते हैं तो कुछ बुरा नहीं करते । प्रत्येक पुरुष कम या अधिक अंशों में राजा होता है इसलिए सामान्य पुरुष के लिए भी कहा जा सकता है कि :

स्नेह-यज्ञ

एक था राजा।

सर सुरेन्द्र में राजा के अंग उचित परिमाण में थे। एक भारतीय को स्वपराक्रम से मिलनेवाली ऊँची-से-ऊँची पदवी उन्होंने प्राप्त की थी इसलिए वह राजा नहीं तो मंत्री तो थे ही सही! राजा की सात रानियाँ हों तो मंत्री होने की योग्यतावाले पुरुष की दो भी न होतीं!

सर सुरेन्द्र की दो रानियाँ थीं : एक मीनाक्षी और दूसरी......

दूसरी रानी का शरीर न था, आकार न था; परन्तु मीनाक्षी की अपेक्षा वह कम आकर्षक न थी। मीनाक्षी का शरीर स्थूल था, स्पर्श लभ्य था। दूसरी रानी का अस्तित्व भर था। सूक्ष्म शरीर से नित नये रूप धारण कर वह सुरेन्द्र को दीख पड़ती, परन्तु उसका स्पर्श अलभ्य था। जिस क्षण उसके स्पर्श का भान होता वह उठकर दूर खिसक जाती। अलभ्य सुन्दरी का मोह कभी नहीं मिटता। यह असम्भव है कि अलभ्य का मोह न हो। मृग-जल के पीछे कितने ही यात्री मरुस्थल के मरुस्थल पार कर गये हैं। गगन-कुसुम के गन्ध प्रेमी आकाश की ओर ताकते हुए आज भी नहीं थकते। सुरेन्द्र ने एक स्वप्न सुन्दरी को वरा था।

मीनाक्षी ने उसे कभी देखा नहीं; फिर भी वह उसे पहिचानती थी। विवाह के कुछ दिनों बाद ही मीनाक्षी की समझ में आ गया कि वह अनमानीती रानी है। पति का हृदय तो उस स्वप्न सुन्दरी के लिए तरसता है। मीनाक्षी का हृदय क्षत-विक्षत हो गया। उसका घाव सूख न सका। रुग्ण जीवन बिताने के लिए जन्मा रोगी अन्त में रोग से अभ्यस्त हो जाता है। वह चुपचाप दर्द सह लेता है। उसके जीवन में से रस उड़ जाता है इसलिए वह जीवन का भार सह लेता है। अनमानीती की भी ऐसी ही स्थिति होती है। मीनाक्षी भी जी रही थी। मानीती रानी के प्रति वैर की तीव्रता भी अब कम हो

चली थी। वैर को तीव्र बनाये रखने की शक्ति भी अब हृदय में नहीं बची थी।

उस मानीती रानी का नाम कीर्ति ! अंग्रेज़ी में उसका परिचय देना हो तो Career कह सकते हैं। वेदान्ती उसे लोकैषणा कहते हैं। उसमें बिजली की चमक है। इन्द्र धनुष के रंग उसके चारों ओर लिपटे रहते हैं। महुए जैसे मीठे और मादक रसमय स्वर में वह सतत गाया करती है। उसके पाश में कमल जैसी नागिन की कोमलता रहने से उसका बन्धन बुरा नहीं लगता। उसके मोह में मदोन्मत्त व्यक्ति हजारों पाप-पुण्य किया करता है। कीर्ति प्रिय है; पाप-पुण्य का मूल्य तो परमेश्वर के यहाँ जो होता हो सो सही ! यहाँ तो उनका मूल्य एक ही माप-दंड से आँका जाता है। कीर्ति को किससे सन्तुष्ट किया जा सकता है ? पाप से भी और पुण्य से भी ! इसका निर्णय तो दार्शनिक ही करेंगे कि कीर्ति के लिए किये जानेवाले यज्ञ इसी काम के लिए किये जानेवाले युद्धों से ऊँची श्रेणी पर रखे जा सकते हैं या नहीं।

सुरेन्द्र बचपन से ही महत्त्वाकांक्षी था। वह सब में प्रथम स्थान माँगता और उसे प्राप्त करता था। उसके पिता साधारण धनवान थे। घर गाड़ी-घोड़ा रखने की उनकी हैसियत थी। सुरेन्द्र उनका एकाकी पुत्र था और उसका पालन-पोषण लाड़-चाव से करने की सहूलियत थी। बहुत प्यार पाकर लड़के अयोग्य हो जाते हैं। सुरेन्द्र वैसा न था। प्यार और सहूलियतों का उपयोग उसने अपनी प्रगति के लिए ही किया। खानगी शिक्षकों से पढ़नेवाले बालक शायद ही कॉलेज तक पहुँचते हैं। सुरेन्द्र अपने खानगी शिक्षकों की सहायता से एक वर्ष का पाठ्यक्रम छः महीने में ही पूरा कर लेता। वह कॉलेज में भर्ती हुआ तो शीघ्र ही पहली श्रेणी के विद्यार्थी के रूप में प्रसिद्ध हो गया। कॉलेज में वह न केवल पाठ्यक्रम में पारंगत रहता, अपितु क्रिकेट और

टेनिस के खेलों में भी एक दक्ष खिलाड़ी होता जाता था। साथ ही डिबेटिंग सोसाइटी में भी वह अपने भाषणों से श्रोताओं को मुग्ध कर देता। पढ़ने और खेलने में वह अग्रणी समझा जाता था और धीरे-धीरे वह स्वयं भी मानने लग गया कि अग्रणी होने ही के लिए वह पैदा हुआ है। विद्यार्थी-जीवन में उसे सम्पूर्ण यश प्राप्त हुआ। उसे विश्वास हुआ कि जीवन में भी उसके भाग्य में यश ही लिखा है।

जिसे अपनी महत्ता का भान होता है उसे महत्ता की कुंजी भी मिल जाती है। ऐसा भान होने के लिए सबसे पहले तो उसे अपनी शक्ति के पुरावे मिल चुकते हैं। यह भान प्राप्त होने के बाद वह अपनी महत्ता को टिकाये रखने या उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि करने के लिए बिना प्रयत्न किये रह ही नहीं सकता। सुरेन्द्र कोई छोटी नौकरी नहीं कर सकता था। ऊँची नौकरियों में भी भारतीयों के लिए लगे प्रतिबन्धों की उसे जानकारी थी। वकालत की अपार सम्भावनाओं ने उसे आकर्षित किया। भारतवर्ष में धन के साथ यश प्राप्त करने की एक-मात्र सहूलियत वकालत में ही है। सुरेन्द्र धन भी चाहता था और यश भी। करोड़पति मिल मालिक, राजा या ज़मींदार का उत्तराधिकारी होने से धन मिल सकता है, परन्तु इस संयोग में किसी अदृश्य शक्ति का हाथ छिपा होता है। राजपुत्रों या अमीरज़ादों द्वारा नामांकित होने के उदाहरण अपवाद-स्वरूप हैं। और वकील? हिन्दुस्तान की वर्तमान प्रगति का इतिहास वकीलों का ही इतिहास है। सुरेन्द्र ने वकालत को अपनाया और उसमें अत्यन्त सफलता प्राप्त की। वकीलों में भी वह अग्रणी हो गया। साथ-ही-साथ सार्वजनिक जीवन में भी उसका स्थान काफ़ी प्रतिष्ठित समझा जाने लगा।

वकालत के समान दूसरा कोई भी व्यवसाय इतना साधन-सम्पन्न नहीं है। उसमें अपार द्रव्य इकट्ठा किया जा सकता है। भूखों मरने

का डर तो उसमें है ही नहीं। वकालत के प्रशस्त मार्ग में कमीशन, लिक्विडेशन, ग़रीब आरोपियों का सरकारी खर्च से बचाव किये जाने आदि की इतनी गलियाँ होती हैं कि उनकी सहायता से वकील को भूखों मरने का बिलकुल ही डर नहीं रहता। वकील का कोई अफ़सर नहीं होता इसलिए उसे ताबेदारी की तकलीफ भी नहीं उठानी पड़ती। न्यायाधीश का मन और मान रख लिया कि उसकी ताबेदारी पूरी हो जाती है। और यह दुःख भी केवल प्रारम्भ में ही उठाना पड़ता है। वकालत जम जाने के बाद तो न्यायाधीश को ही वकील का मन और मान रखना पड़ता है। 'हार-जीत के लिए कदापि शोक न करो' गीता के इस कथन पर जितनी आसानी से वकील आचरण कर सकता है उतना कोई महातपस्वी भी नहीं कर सकता। हार-जीत के हर्ष-शोक का भार अपनी फीस के साथ ही वे मूर्ख मुवक्किलों के सिर पर लाद देते हैं; इसलिए वकीलों का बूँद भर रक्त भी कम नहीं होता। आराम करते अधिकारी, चैन उड़ाते सेठ और हार-जीत से अलिप्त रहनेवाले वकील में से कोई भी दुर्बल नहीं दीखता।

इस व्यवसाय की स्वतन्त्रता भी अद्भुत है। सच्चे और झूठे दोनों पक्षकारों की ओर से लड़ा जा सकता है। दिन-दहाड़े सरे बाजार खून करनेवाले अपराधी को भी निरपराध कहनेवाला पहला व्यक्ति वकील ही होता है; चिड़िया को उड़ाने में भी असमर्थ डरपोक को चोर प्रमाणित करनेवाला वकील ही होता है। एक वकील जुआरी को भला आदमी ठहराने का प्रयत्न करता है तो वही वकील भले आदमी को जुआरी सिद्ध करने के लिए भी कमर कसता है। वकालत की दार्शनिकता के लिए बड़ी-बड़ी पुस्तकें लिखी गई हैं और न्याय कार्य के लिए उससे प्राप्त होनेवाली सहायता प्रशंसित हुई है। लेकिन ऐसा लगता है कि दार्शनिकता केवल पुस्तकों के पन्नों के लिए ही निर्मित हुई है। सामान्य बुद्धिवाले के लिए तो वकील दुधारी तलवार है।

जिस ओर धन का बोझा बढ़ता हो उधर से उसका उपयोग बिना किसी हिचकिचाहट के किया जा सकता है। यदि न्याय के लिए ही वकालत होती तो न्याय-मन्दिरों का तीन-चौथाई काम कम हो जाता।

वकील के लिए न चोर की ओर से खड़े होने में कोई हीनता है और न साधु की ओर से खड़े होने में विशेष महत्त्व। इस अनोखी स्वतंत्रता के कारण वकील मुवक्किलों का इच्छानुसार चयन कर सकते हैं। न्याय-दान का काम जितना ही अधिक उलझनवाला, अटपटा और वाक्जाल से परिपूर्ण हो जाता है उतनी ही अधिक वकील की होशियारी समझी जाती है। फाँसी पर लटकते अपराधी को छुड़ा लानेवाला वकील अत्यन्त प्रतिष्ठित गिना जाता है।

सुरेन्द्र ने भी अपने व्यवसाय में बहुत शीघ्रता से प्रतिष्ठा प्राप्त की। बत्तीस-तैंतीस वर्ष की उम्र में तो वह वकीलों का नेता बन गया। उसके घर में पैसे की टकसाल खुल गई। उसे अपनी-अपनी ओर से खड़ा करने के लिए पक्षकारों में प्रतिद्वन्द्विता होती और जिस ओर से सुरेन्द्र खड़ा हो जाता वह पक्ष अपनी विजय निश्चित समझता था। सुरेन्द्र की दलीलों के विरुद्ध फैसला देना न्यायाधीशों के लिए बहुत ही कठिन हो जाता था। छटापूर्ण वाक्चातुर्य, प्रभावशाली बहस, शब्द की और भावार्थ की बाल की खाल निकालती दलीलें, कानूनी दाव-पेचों समर्थ हथौड़ी और जिनसे न्यायाधीश चकित हो जाय ऐसे सारे लागू पड़ते फैसलों का प्रमाणोल्लेख : यह सब वकील को यशस्वी बनाने में पर्याप्त हैं। सुरेन्द्र को वैसा ही यश प्राप्त हुआ। न्यायाधीश, वकील और मुवक्किल सुरेन्द्र की ओर सम्मान-पूर्वक देखते थे। यह युवक वकील अपना मुकदमा लड़ता तो विरुद्ध-पक्ष के गवाहों की अर्ध धमकी और अर्ध तिरस्कार-भरी उलट तपास सुनने, अपने मुवक्किल की ओर से न्यायाधीश और पंचों को सम्बोधित उसका प्रभावशाली भाषण सुनने उसके समव्यवसायी बन्धु भी अपना अहंकार भूलकर आ बैठते थे।

ऐसे युवक, बुद्धिशाली और सफल वकील को समाज यदि बहुत ऊँचे आसन पर बैठाये तो कोई आश्चर्य नहीं। वकील समाज में कोई भी उच्च स्थान प्राप्त कर सकता है। अधिकार नेता नहीं बन सकता। स्वामि-भक्त के वर्तुल में घिरा हुआ सरकारी नौकर राजनीति के बारे में कुछ नहीं बोल सकता। राजनीति उसके लिए लाल झंडी—प्रतिबन्ध—हो जाती है। व्यापारी अपने लेन-देन में इतना डूबा रहता है कि सामाजिक कार्य में आगे आने की उसे इच्छा ही नहीं होती। अपने मुनीम, गुमाश्तों में ही उसका समाज सीमित होता है। डॉक्टर थोड़े-बहुत आगे आते हैं; परन्तु उनकी जबान वकीलों की तरह बेलगाम नहीं होती। केवल वकीलों का धन्धा ही ऐसा है कि जिसमें सब कुछ करने और सब कुछ बोलने की सहूलियत होती है।

सुरेन्द्र ने इस सहूलियत से पूरा लाभ उठाया। धार्मिक विषय पर बोलना हो या राजनीति पर बोलना हो, स्वास्थ्य पर बोलना हो या किसी का स्वागत करना हो, वकील को ज़रा भी कठिनाई नहीं होती। मुवक्किलों की लड़ाकू-वृत्ति पर गुजर-बसर का आधार रहने से वकील को सरकार की पर्वाह भी नहीं होती, इसलिए वह सरकार के विरुद्ध जोरदार भाषण देकर तालियाँ बजवा सकते हैं। जहाँ प्रतिष्ठा प्राप्त होती हो वहाँ तत्काल वे देश की सहायता के लिए दौड़ जाते हैं और वकालत छोड़ने के सिवा हर एक राजनैतिक कार्यक्रम में सहायता पहुँचाते रहते हैं।

सुरेन्द्र की दृष्टि कुछ समय से मन्त्रीपद पर पड़ रही थी। स्वार्थ, महत्ता और देश-भक्ति के त्रिविध वर्तुल में चक्कर काटते अनेक बुद्धिमान मन्त्रीपद में विश्राम लेकर तीनों आदर्शों की प्राप्ति कर सन्तोष मानते हैं। सरकार ने यह चमकता खिलौना सुरेन्द्र के आगे रखा और वह मन्त्री हो गया। साथ ही साथ वह 'सर' भी बन गया।

सर सुरेन्द्र ने गर्वपूर्ण—सब पर कृपा करता हुआ—चेहरा रखा,

परन्तु पति-पत्नी के बीच गर्व सदा पर्दा डालता है। मीनाक्षी को पति चाहिये था। वह अपने पति में निस्सन्देह शक्ति, सामर्थ्य और स्वाभिमान देखना चाहती थी ; पति की कीर्ति बढ़े, पति के प्रशंसक सब ओर फैलें और समाचार-पत्रों में उसके गुणगान गाये जायँ यह सब उसे सुहाता था। पति के पास अगर धन इकट्ठा हो और वह सुख के साधनों को अपने चारों ओर कलात्मक ढंग से सजा रखे यह उसे कदापि बुरा नहीं लगता था।

परन्तु पत्नी अपने और पति के बीच अन्तराय डालनेवाली किसी भी वस्तु को नहीं सह सकती। मीनाक्षी को हृदय से जुड़ा हुआ पति चाहिये था। पति का व्यवसाय क्षण भर के लिए ही पत्नी को भुला दे तो वह पत्नी को असह्य हो उठता है। पति की श्रेष्ठता पति-पत्नी के बीच ज़रा-सी भी विलगता कर देती हो तो वह श्रेष्ठता पत्नी को आफत जैसी लगती है। पति का यश और पति की कीर्ति यदि पत्नी को पति के सतत स्पर्श से रोकती है तो वह यश पत्नी का दुश्मन हो जाता है और वह कीर्ति उसकी वैरिन बन जाती है। पत्नी सदा पति से पूछती रहती है : मैं बड़ी कि तुम्हारा धन्धा ? मैं अधिक हूँ या तुम्हारी श्रेष्ठता ? पहले मैं या तुम्हारी कीर्ति ?

वह भले ही यह प्रश्न मुँह खोलकर न पूछे, परन्तु उसकी यह प्रश्नावली जीवन-भर अनबोले ही पूछी जाती है और जिस क्षण उसे लगता है कि उसके पति ने अपने धन्धे को उससे ऊँचा स्थान दिया है, अपनी श्रेष्ठता को पत्नी से अधिक माना है और अपनी कीर्ति को उससे बीस गिना है तो उसका पत्नी-हृदय जल-भुनकर खाक हो जाता है। उसके हृदय में से जीवन-रस सूख जाता है। वह स्त्री मिट जाती है, पत्नी मिट जाती है ; रह जाती है मात्र एक गुड़िया।

विवाह के बाद मीनाक्षी के दो वर्ष मस्ती में और एक वर्ष उस मस्ती की स्मृति में बीते, परन्तु तीसरा साल बीतते-बीतते मीनाक्षी को

कुछ-कुछ ऐसा आभास होने लगा कि सुरेन्द्र उसे अपने से दूर हटाता जाता है। यह आभास स्पष्ट हुआ और मीनाक्षी अच्छी तरह से समझ गई कि सुरेन्द्र ने मीनाक्षी के साथ विवाह नहीं किया है; मीनाक्षी के नाम से पुकारी जानेवाली एक बहुत ही सुन्दरी, बुद्धिमती और जाज्वल्यमान परी से विवाह किया है। मीनाक्षी के साथ विवाह करके सुरेन्द्र एक सर्वश्रेष्ठ युवती के साथ लग्न करने का अहंकार पोषित करना चाहता था। फिर उसे यह गर्व करके बैठ नहीं रहना था; उसे तो सारे संसार में ढिंढोरा पीटना था कि सुन्दरी और बुद्धिमती युवती ही उसकी पत्नी हो सकती है। उसे पत्नी के साथ एक मन नहीं हो जाना था; अपने विजय-चिह्नों में पत्नी को सबसे आगे रखना था।

मीनाक्षी का स्त्री-हृदय ऐसा गर्वमय परायापन शायद ही सह सकता था। वह भी अहंकारिणी थी। पति को वह पूरी तरह से अपना बनाना चाहती थी। उसका हृदय इतना दरिद्र न था कि सुरेन्द्र जैसा पति पाकर वह ईश्वर और सुरेन्द्र का बड़ा उपकार मानने लग जाती। सुरेन्द्र की कृपा स्वीकार करने के लिए वह तैयार न थी। पति का कीर्ति-लोभ उसे तीर की तरह लगा; कीर्ति के पीछे भागनेवाले पति का अपने प्रति व्यवहार उसे अनमानीती रानी के साथ किये जानेवाले बर्ताव जैसा लगा। उसने अपने हृदय के चारों ओर कोट बाँधना शुरू किया। उसने पति के जीवन से आनन्दित होना छोड़ दिया। वह एकाकिनी बन गई। मन के सुनसान महल में वह रहने लगी। एक-दूसरे के सामने होते हुए भी पति-पत्नी के बीच में एक अप्रत्यक्ष दीवाल आ खड़ी हुई।

संसार नहीं जानता था पर सुरेन्द्र को कुछ-कुछ ऐसा लगा कि मीनाक्षी उससे दूर रहती है। सुरेन्द्र को इससे और अधिक सहूलियत हो गई। वह अपने काम में पूरा ध्यान लगाने लगा। पत्नी की ओर से उसे ज़रा भर कठिनाई न थी। वह कीर्ति के पीछे दौड़ा ही चला

गया। कीर्ति का मोहिनी स्वरूप हँसता-ललचाता आगे-आगे नाचता चला जाता था। उस मोहिनी का आँचल सुरेन्द्र के हाथ में आता, न आता और वह मोहिनी को बाहुपाश में जकड़ने अधिक शक्ति से आगे बढ़ने लगा। यह तो सुरेन्द्र भी नहीं कह सकता था कि वह मोहिनी उसके हाथ लगी या नहीं। एक दिन उसने देखा कि कीर्ति के पीछे दौड़ते-दौड़ते उसे मंत्रित्व प्राप्त हुआ है। वह और भी आगे दौड़ने को तैयार था।

मीनाक्षी बचपन में सुनी कहानी याद करती।

एक था राजा और उसकी दो रानियाँ थीं—एक मानीती और दूसरी अनमानीती। क्या स्वयं मीनाक्षी ही अनमानीती रानी नहीं थी?

श्याम की खातिर में हो गई दीवानी
हौंस रही मन में की मन में।
भूल आई माला गुंजन की बन में।

—मीराबाई

पति-पत्नी को एक दूसरे से विलग करनेवाला घटना-चक्र पेचीदा है। दिन-रात का सतत सहवास भी उसका निवारण नहीं कर सकता। वियोग परस्पर में खिचाव रखता है; जब कि संयोग परस्पर को विरुद्ध प्रवाह में खींच ले जाता है। विचित्र ढंग से—यह चक्र चलता है!

एक दिन सुरेन्द्र अपने चारों ओर काग़ज़ और पुस्तकें फैलाये बैठा था। एक महत्त्वपूर्ण मुक़दमे के लिए वह मुद्दे इकट्ठे कर रहा था। वह अपने काम में इतना लीन हो गया कि मीनाक्षी उसके पास आ बैठी इसका उसे खयाल ही न रहा। ऐसा कई बार होता है; पत्नी का यह आग्रह होते हुए भी कि उसका नहीं सुनाई देनेवाला पद-रव भी पति को सुनाई ही देना चाहिये यदि पति न सुन सके तो पत्नी को बुरा नहीं लगता। मीनाक्षी पाँच मिनट तक बैठी रही। ऐसी तल्लीनता देखकर वह थोड़ी प्रसन्न हुई; परन्तु उसे भंग करने की भी उसमें प्रबल इच्छा हो आई। उसने धीरे से सुरेन्द्र की आँखों पर हाथ रखा। सदा अच्छा लगता हाथ इस समय सुरेन्द्र को नहीं सुहाया। उसने धीरे से हाथ अलग हटा दिया और असम्मति सूचक शब्द में कहा—

'अ ह!'

बिना कुछ और बोले ही वह अपने काम में लग गया। उसे यह जिज्ञासा भी न हुई कि आँखें मूँदनेवाला हाथ किसका था ! काम कितना ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो पति यदि पत्नी के सामने क्षण-भर भी न देखे तो यह कैसी बात है ! मीनाक्षी ने पूछा :

'यह सब क्या फैला रखा है ?'

'बहुत ही महत्त्वपूर्ण मुक़दमा है।' सुरेन्द्र ने छोटा-सा जवाब दिया।

इस बात की सच्चाई का मीनाक्षी को विश्वास हो गया कि वकील बात करने की भी क़ीमत माँगते हैं। सवाल यह है कि वकील अपनी पत्नी का मुक़दमा भी मुफ़्त लड़ सकता है या नहीं ! और इसके बारे में तो कोई सवाल ही नहीं उठता कि यदि कभी वकील इस तरह का मुक़दमा मुफ्त लड़े तो उसका परिणाम मुफ्त लड़े जानेवाले मुक़दमे से अच्छा होता है या नहीं।

पत्नी इस उपेक्षा को सह न सकी। उसने सुरेन्द्र के हाथ में से काग़ज़ छीन लिये।

'नहीं पढ़ना अभी। रहने दो।' मीनाक्षी ने कहा और पति जीवन में पहली ही बार झुँझलाया :

'यह क्या ! तू भी बिना समझे-बूझे काग़ज़ छीन लेती है ! ला, काग़ज़ वापस कर।'

अभिमानिनी पत्नी जीवन में पहली बार अपमानित हुई।

'लो, तुम्हारे काग़ज़।'

इतना कह, काग़ज़ मेज पर डाल, मीनाक्षी चल दी।

मीनाक्षी पागल तो न थी ! क्यों उसे अपने कामकाजी पति के काम में बाधा देनी चाहिये ! उसने सोचा होता कि मुक़दमे में कितनी अधिक फ़ीस मिलनेवाली है !...कैसे महत्त्वपूर्ण क़ैदी को छुड़ाना है !...किसने...! परन्तु पत्नी किस युग में दलीलों से रीझी है ! उसे

रिझाने का प्रथम और अन्तिम नियम यही है कि पति के जीवन में वही प्रथम है और बाकी सब उसके बाद है, ऐसा विश्वास उसे प्रतिक्षण दिलाया जाय।

यह बात सच है कि सुरेन्द्र का मुक़दमा बहुत ही महत्त्वपूर्ण था, परन्तु उस अति महत्त्वपूर्ण काम में से पाँचेक क्षण नष्टकर, पत्नी को अधिक महत्त्व दे उसने पूछा होता कि :

'मीनाक्षी, देख इस केस में यह...हकीकत है। तुझे क्या लगता है ? मैं जीतूँगा या नहीं ?'

मीनाक्षी ने कभी इन पाँच क्षणों का दुरुपयोग न किया होता। वह अवश्य समझ जाती कि इस काम में से पति का समय लेना उसे हरवाने के समान है और पति की पराजय से किस पत्नी को प्रसन्नता होती है ?

यदि इतना समय भी न मिलता तो मीनाक्षी के हाथ को अपने हाथ में पकड़े रख, क़ागज छुड़ा, उसे केवल इतना ही कहना चाहिये था कि :

'मीनाक्षी, तेरे हाथ को छूकर मैं अधिक आराम से काग़ज़ देख सकूँगा।'

यह भी अधिक था तो, मात्र एक चुम्बन लेकर—एक मुसकराती दृष्टि डालकर—उसने पत्नी को जीत लिया होता; परन्तु पत्नी को सतत आकर्षित रखने की चतुरता बहुत ही कम आदमियों में होती है। इस चतुरता—कला—की कमी के कारण ही प्रेम सरोवर छिछले हो जाते हैं। अन्यथा समय के साथ प्रेमोन्माद घटता क्यों है ?

छोटे छोटे प्रसंगों को सब कोई छोड़ देना चाहते हैं। उन्हें महत्त्व-हीन मानकर सब कोई उन्हें भूलने का प्रयत्न करते हैं। क्षमा की मधुरता-भरी माँगों में वे प्रसंग भूल भी जाते हैं।

पति ने चाव से पत्नी के लिए गजरा बनवाया। फूलों की भेंट

जैसी दूसरी कोई भेंट नहीं। शयनकक्ष में पति ने उसे रखवा दिया। पत्नी पहले आ सोई। पति ने आकर देखा तो गजरा नदारद। पति ने खोज शुरु की :

'मीनाक्षी, तूने गजरा देखा ?'

'ना।' झूठ बोलना क्या सदा पाप ही है ? पति-पत्नी के बीच की छेड़खानियों और जीवन के हास्य-कटाक्षों में से असत्य निकाल दिया जाय तो क्या वे भी अदृश्य न हो जाएँगे ? पाप हो तो भी ये छेड़-खानियाँ और हास्य छोड़े नहीं जा सकते। परमात्मा की न्याय-तुला में यह झूठ कितने ही अगणित सत्यों से भारी होता होगा। मीनाक्षी झूठ बोली।

'तो फिर यहाँ से कहाँ गया ?' गम्भीर होते हुए पति ने पूछा। मोगरे से भी अधिक प्रफुल्ल और जुई से भी अधिक सुन्दर मीनाक्षी उसके पास ही थी। फिर क्यों वह पुष्पमाला ढूंढ़ना चाहता था ? खोजकर उस पुष्पमाला को वह मीनाक्षी के पास कुम्हलाना ही चाहता था न ?

'तुम्हीं खोज निकालो न ?' मीनाक्षी ने कहा।

पति ने खूँटी देखी, मेज देखी, पानी का कूजा ढूँढ़ा, परन्तु कहीं भी गजरा न मिला। मीनाक्षी उठकर बैठ गई और खिलखिला पड़ी।

'तू ने ही छिपाया है !' विश्वास-पूर्वक सुरेन्द्र ने कहा। आरोपी का अपराध प्रमाणित करते हुए वकील बोला।

'मैंने छिपाया हो तो मैं यह रही। देख लो।' हाथ, पाँव, छाती आदि पर शीघ्रता से दृष्टि फेंकती हुई मीनाक्षी ने बचाव किया। एक भी स्थान पर सुरेन्द्र को गजरा नहीं दीखा। हाँ, पुष्प समूह के समान उन अवयवों को गजरे से अलंकृत करने की कोई आवश्यकता न थी, परन्तु इस समय सुरेन्द्र को यह भान न रहा। उसे तो गजरा ही चाहिये था। पत्नी को रिझाने के लिए ही वह मँगवाया था और उसके बिना

ही पत्नी रीझ गई थी। फिर भी बार-बार उसके मन में यह प्रश्न उठता था :

'तो गजरा गया कहाँ?'

'तुम लाये ही न होगे।' मीनाक्षी ने कहा।

'मैं इतना भुलक्कड़ हूँ?' इलाहाबाद दस, कलकत्ता बाईस, बम्बई अड़तालीस इस तरह सैकड़ों की संख्या में फैसलों के नम्बर याद रखने-वाले प्रखर वकील को भुलक्कड़ कहना क्या उसका अपमान करने के बराबर नहीं है? वकील मिटकर यदि वह पति बन गया होता तो बिना किसी तकरार के कहता :

'मेरी स्मृति ही ऐसी है। मैं सब कुछ भूल जाता हूँ। अब क्या करूँ! गजरे के बदले अपना हाथ ही तेरे गले में डालूँ तो फूल जितना कोमल तो नहीं ही है; पर गजरा कहाँ से लाऊँ?'

लेकिन उसे भुलक्कड़ नहीं बनना था। सर्वज्ञता और सर्वशक्ति सम्पन्नता के भान के साथ उसे पत्नी के साथ खेलना था। पत्नी ने इस अहंकारी मनोवृत्तिवाले पति को मनुष्य बनाना चाहा :

'साल भर भुलक्कड़! हार तो लाये नहीं और कहते हो कि लाया हूँ!'

'क्या मैं झूठ बोलता हूँ?'

'और नहीं तो क्या?' पति के चिढ़ने से आनन्दित होती हुई मीनाक्षी ने कहा।

'मैं कभी झूठ नहीं बोलता।' चिढ़े हुए आदमी यही बहाना बना-कर अपने क्रोध को छिपाते हैं। ऐसे अभिमानी आदमी को आज से दो तीन लाख वर्ष बाद पैदा होना चाहिये था। आज की दुनिया में सदा ही सच बोलने की सहूलियत नहीं है।

'तो फिर गजरा खोज निकालो।'

'तू ने छिपाया है और फिर मुझे खोजने को कहती है। सब कुछ

चल सकता है, सिर्फ असत्य नहीं सहा जायगा।'

ईश्वर भी झूठे जगत् को टिकाये रखते हैं। झूठ नहीं चलेगा कहनेवाला मिथ्याभिमानी आदमी क्या खुद ही झूठ नहीं बोलता? यह सत्यवादिता देखकर मीनाक्षी का चेहरा थोड़ा उतर गया। उसने सुरेन्द्र की बगल में खड़े हो अरसिक को भी रसिक बनानेवाला प्रस्ताव किया :

'चलो हम दोनों ढूढ़ें ; होगा तो अभी मिल जायगा।'

सुरेन्द्र ने यदि इस सूचनानुसार किया होता तो क्षण-भर में गजरा मिल जाता। वह अरसिक न था, परन्तु रसिकता में अपना स्वामित्व स्थापित करने के लिए आतुर विजय-गर्वोन्मत्त रस लेता था। रसिकता विनिमय में है ; परस्पर की तल्लीनता में है। इसमें विवेचक या द्रष्टा की ज़रा-सी भी अलिप्तता—ऊँचाई—नहीं चल सकती। इस विनिमय में—तल्लीनता में—मूर्खता है, उन्माद है ; बुद्धि और समझदारी को सन्तुष्ट करनेवाला एक भी तत्व इसमें नहीं है ; परन्तु इस मूर्खता और उन्माद में जो मजा है वह बुद्धि और समझदारी के समुद्र को मथने से भी नहीं मिल सकता। सुरेन्द्र यह हृदय—विनिमय चूक गया। उसे तो गजरा ही चाहिये था। उसके मिलने पर ही वह आगे बढ़कर पत्नी को पहिचान सकता था। उसके और पत्नी के बीच में वह निर्दोष पुष्प-माला आ खड़ी हुई।

'मुझे खोजने की ज़रूरत नहीं। तेरे लिए लाया था ; तुझे गर्ज हो तो ढूँढ़ निकाल।' सुरेन्द्र ने मीनाक्षी के हृदयोल्लास के उफान पर ठंढा पानी डाल दिया। रसिका ने कभी रस या रसिक की पर्वाह की सुनी है? रस प्रदेश की यह सार्वभौम महारानी कभी हाथ नहीं पसारती। पति को भी वह घुटने टेककर भीख माँगने के लिए विवश कर देती है।

मीनाक्षी बिना एक अक्षर बोले वहाँ से हटकर पलंग पर जा बैठी और झट से मुँह फिराकर सो गई।

उठावदार काली चमकती वेणी से लिपटा प्रफुल्लता-पूर्वक हँसता हुआ सफेद गजरा सुरेन्द्र ने देखा। मानो श्याम चन्द्र वर्तुल के ऊपरी भाग में चन्द्रकला उगी हो! क्षण-भर में सुरेन्द्र पर अब तक के झगड़े की सभी असत्यता प्रकट हो गई। अपनी भयंकर भूल उसको समझ में आ गई। गजरा न मिला तो उसे गजरे जैसी खिली हुई मीनाक्षी से ही काम चला लेना चाहिये था। जब उसे लगा कि मीनाक्षी ने ही गजरा छिपाया है तो उसे उसकी वेणी पर हाथ फिराना चाहिये था। इसीलिए तो मीनाक्षी पास आई थी। मोगरे की सुगन्ध भी उस समय उसे क्यों न आई? सारा कमरा उस मोगरे की गन्ध से सुवासित हो रहा था।

थोड़ी देर बाद सुरेन्द्र मीनाक्षी को मनाने लगा। मीनाक्षी जाग रही थी, परन्तु सुरेन्द्र की पत्नी तो मूर्छित पड़ी थी। वह सुरेन्द्र को न मिली।

ये बातें क्या इतनी भयंकर हैं कि जिनसे पति-पत्नी का आपस में मन टूट जाय? ऐसी बातों को यदि अलग से देखा जाय तो इनमें कुछ न मिलेगा। कलहहीन सम्बन्ध नीरस होता है। यदि अल्हड़ता और मस्ती न हो तो जीवन बे-मजा हो जाता है, परन्तु उस कलह में ज़रा-सा भी स्वार्थ आ जाय, उस अल्हड़ता में थोड़ा-सा भी अहंभाव मालूम पड़े और उस मस्ती में थोड़ी-सी भी विलगता दीख पड़े तो समझ लेना चाहिये कि पति-पत्नी के बीच की एकता नष्ट हो गई है। एकता नष्ट हुई कि जीवन नीरस हो जाता है। संसार में कितने जीवन में नीरस होते हैं!

और यह नीरसता छोटे-छोटे प्रसंगों से ही पैदा होती है।

'आज कौन-सी साड़ी पहनूँ?' मीनाक्षी ने एक दिन पूछा।

'जैसी तुझे अच्छी लगे।' सुरेन्द्र ने जवाब दिया।

इसके बाद फिर कभी मीनाक्षी ने नहीं पूछा कि वह कौन-सा कपड़

पहिने ! बिना कुछ समझे सुरेन्द्र ने केवल इतना कहा होता कि : 'भूरी साड़ी पहिन' तो लोगों की आलोचना की रत्ती भर पर्वाह किये बिना मीनाक्षी ने भूरी साड़ी पहिनी होती : दाम्पत्य-जीवन का एक दिन अत्यन्त सुखमय बनाया होता।

हीरे का हार गढ़वाकर पत्नी की गर्दन में डालनेवाला पति पत्नी के हृदय को नहीं जीत सकता ; जब कि गुंजे की माला पहिनानेवाला प्रेमी प्रेमिका को रिझा लेता है। किस लिए ? हीरे का हार पहिनाकर वह घमण्ड में फूल जाता है। वह हीरों से शोभित गर्दन नहीं देखता। उसे तो अपने खरीदे हुए हीरों की चमक भर दिखाई देती है। पत्नी इस उपेक्षा को कभी सह सकती है ?

गुंजे की माला लाकर अपने हाथ से प्रियतमा के गले में डालता हुआ प्रेमी कहता है :

'यह काले मुँहवाली लाल गुंजा तेरे सुन्दर गले में कितनी भली लगती है ! मन चाहता है कि तेरा गला देखता ही रहूँ।'

प्रियतमा प्रियतम पर प्राण न्योछावर करती है। हीरे का हार मूल्यवान है या गुंजे की माला ?

कितने ही भूल जाते हैं कि प्रेम भी एक कला है। प्रथम प्रणय की रसिकता और विवाहोपरान्त की रसहीनता का मर्म यही है कि प्रथम प्रणय में घड़ी भर भी यह विस्मरण नहीं होता कि प्रेम एक कला है ; जब कि विवाहोपरान्त पुरुष इच्छित वस्तु को प्राप्तकर इतना उपेक्षा-मय बन जाता है कि 'प्रेम एक कला है' का ध्यान उसे शायद ही कभी होता है।

सुरेन्द्र की इस उपेक्षा से परिचित मीनाक्षी को उसके टीमटाम भरे जीवन से मोह कैसे होता ? सुरेन्द्र उसे मनमाना पैसा देता, मन पसन्द गहने-कपड़े ला देता, बाग बगीचों और पर्वतमालाओं की सैर कराता। संसार यह देखता और कहता :

'मीनाक्षी कितनी भाग्यशालिनी है ! उसे कमी ही काहे की !'

संसार उस कमी को नहीं जान पाता। मीनाक्षी को ही उसका ख्याल बना रहता। अपने विवाह से पहले एक निर्धन प्रेमी द्वारा कहे गये वचन उसे बार-बार याद आते :

'मीनाक्षी, मैं ग़रीब हूँ, परन्तु मैं अपना सर्वस्व —अपने प्राण— भी तेरे चरणों पर समर्पित कर दूँगा। मेरे जीवन में तुझसे अधिक और कुछ न होगा।'

सांसारिक दृष्टि से मीनाक्षी के पास अनन्त वैभव था, परन्तु उस वैभव में पति का सर्वस्व कहाँ था ? पति के प्राण कहाँ थे ? तब तो सभी कुछ अपूर्ण था।

उस सर्वस्व देनेवाले को—प्राण चरणों पर समर्पित करनेवाले को—धक्का देकर उसने सुरेन्द्र का हाथ पकड़ा था।

वह दरिद्र प्रेमी कहाँ चला गया ? क्यों गुम हो गया ? दस दस वर्ष होने आये तो भी उसका चेहरा एक बार भी क्यों नहीं दीख पड़ा ?



१०

अन्धारी रजनीओमां ऊघडे उरनां बारणां हो व्हेन !
झूले रसपारणां हो व्हेन !
त्यारे झबके कीधा अतिथिनां संभारणां हो व्हेन !
लउं हुं वारणां हो व्हेन !*

— न्हानालाल

कई चेहरे हम शीघ्रता से भूल जाते हैं ; कई चेहरे हम आजीवन नहीं भूलते। कई वाक्य भूलने के लिए ही बने होते हैं ; कई वाक्य जीवन भर नहीं भूले जाते। मीनाक्षी ने उस दरिद्र प्रेमी का चेहरा और उसके शब्द भूलने का काफी प्रयत्न किया था। वह अपने प्रयत्न को सफल भी समझने लगी थी। सुरेन्द्र की शान-शौकत में, सुरेन्द्र की कीर्ति में मीनाक्षी सब कुछ भूल सकती थी, परन्तु पत्नी की असहिष्णु आँख ने देखा कि सुरेन्द्र के जीवन-संघर्ष में मीनाक्षी का स्थान कीर्ति से नीचा है। इस समझ के साथ ही भुलाया जानेवाला मुँह उसकी आँखों में रमने लगा। कई बार उसे ऐसा भी लगता था कि उस प्राण-बिछानेवाले स्नेही को छोड़कर देदीप्यमान सुरेन्द्र को स्वीकार करने में उसने कहीं ग़लती तो नहीं की है ?

ज्यों-ज्यों सुरेन्द्र उन्नति करता गया मीनाक्षी की धारणा दृढ़ होती

---

* अन्धेरी रात में हृदय कपाट खुलते हैं, प्रेम का झूला झूलते हैं, तब मन के उस पाहुने की स्नेह-स्मृति चमक जाती है, प्यारी बहिन, मैं बलैया लेती हूँ।

गई कि उसने ही भूल की है। सुरेन्द्र कीर्ति-मन्दिर का निर्माण कर रहा था। उस कीर्ति-मन्दिर के कलश स्थान पर उसने मीनाक्षी को स्थापित किया होता तो भी वह स्थान उसे दुःखदायी हो जाता। कीर्ति-मन्दिर की कलश-पुतली बनने की अपेक्षा एक झोंपड़ी का प्राण बनने को वह गौरवमय समझती थी। यदि उसने झोंपड़ी ही पसन्द की होती तो कितना अच्छा होता? उसका गहने-कपड़ों का मोह नष्ट हो गया। गाड़ी घोड़े और धन-वैभव में उसे आनन्द न रहा। पति की सफल वकालत और नेतृत्व का उसे गर्व न रहा और जब पति को मन्त्री पद प्राप्त हुआ तो भी मीनाक्षी इस महत्ता के प्रति उदासीन ही रही। वह दिखावा सब कुछ करती थी। उसे भेंट किये जानेवाले अभिनन्दन-पत्रों का वह विवेकपूर्ण उत्तर देती और अच्छे-अच्छे मण्डलों की महिलाओं को निमन्त्रित कर आनन्द प्रदर्शित करने का दिखावा करने में भी न चूकती थी। परन्तु ऐसे ही एक मौक़े पर उसने किरीट का नाम सुना और उसका सारा शरीर कंपायमान हो उठा। देह के अणु-अणु को कुरेदती, उन्हें जाग्रत करती पीड़ा का उसे एकाएक भान हुआ। किरीट, उसका वही दरिद्र प्रेमी! उसी को त्यागकर उसने सुरेन्द्र को अपनाया था।

कारण!

किरीट निर्धन था, सुरेन्द्र धनवान था। इतना ही नहीं, किरीट निर्धन मा का पुत्र था; सुरेन्द्र के माता पिता ने उसके लिए बहुत-सी सम्पत्ति छोड़ी थी। उस समय मीनाक्षी को ग़रीबी से डर लगा था। आज वह बैठी ग़रीबी को ढूँढ़ रही थी। वैभव के बन्धनों से वह अकुला गई थी, परन्तु वे बन्धन कैसे छूटते?

दस वर्ष बाद उसने फिर किरीट का नाम सुना और उसके हृदय में बन्धनों के प्रति विद्रोह जाग्रत हुआ। अप्रसन्न होकर जाती हुई चमेली को उसने पीछे से जाकर रोका और न केवल किरीट के निवास-

स्थान का पता पूछा अपितु किरीट से मिलने की आशा में दोपहर को एक ग़रीब मुहल्ले के बेढंगे मकान में हो भी आई। उसके सोफर को थोड़ा आश्चर्य हुआ। ग़रीबों की परिस्थिति पर बोलना धनियों के लिए आसान है; परन्तु ग़रीबों की दशा को अपनी आँखों देखना इतना आसान नहीं। ग़रीबों के मुहल्लों में धूलवाली सड़कों पर अपनी मोटर ले जाना भी उन्हें खाँसी को निमन्त्रित करने जैसा लगता है। उनके रोग भरे मकानों में प्रवेश करना श्मशान-प्रवेश जैसा भयंकर लगता है। ग़रीबों का स्पर्श तो हो ही कैसे सकता है? असंख्य रोग कीटाणुओं से भरपूर ग़रीब बीमारियों के घूमते-फिरते भंडार हैं। दस दिन तक साबुन घिसने पर भी वे स्पर्शजन्य कीटाणु धनिकों के अंगों से दूर होते हैं या नहीं, इसका निर्णय करने के लिए निष्णात डाक्टरों की सभा बुलानी पड़ती है। मीनाक्षी कभी भी ऐसे मुहल्ले में गई न थी। शोफर को आश्चर्य होना ही चाहिये।

परन्तु किरीट को वहाँ न पाकर उसने उससे भेंट करने के लिए कहलवाया। किरीट की प्रतीक्षा में बैठी हुई मीनाक्षी के हृदय में उत्साह था। दस वर्ष बाद फिर से वह मनमोहन मुँह देखने को मिलेगा। उस मुँह को देखने के लिए उसने बड़ी अधीरता-पूर्वक दरवाजा खोला। किरीट के बदले उसने मधुकर को देखा। मधुकर किरीट की अपेक्षा कुछ कम सौन्दर्यवान न था, फिर भी वह मीनाक्षी को अच्छा क्यों न लगा? हृदय द्वारा और संसार द्वारा सौन्दर्य की की गई व्याख्याओं में अन्तर होता है। मीनाक्षी को असह्य निराशा हुई। मधुकर को विदा देकर वह अकेली जा बैठी। पुराने स्मरण ताजे हुए। एक स्मृति ने उसके चेहरे पर मुसकराहट फैला दी। आगे बढ़ने की हाय-तोबा में पत्नी के सौन्दर्य को भूल गये सुरेन्द्र की दृष्टि में उस मुसकराहट ने जादू का-सा असर किया। सुरेन्द्र ने चुम्बन लिया। मीनाक्षी ने उस चुम्बन को पोंछने के लिए गाल पर हाथ फिरा दिया।

सुरेन्द्र देखता रह गया। उसे अपमान मालूम हुआ। एक गोरे अधिकारी को धमकाकर आनेवाला मन्त्री ऐसा अपमान सह सकता था? क्षण-भर के लिए उसे क्रोध आया, परन्तु मीनाक्षी का सौन्दर्य आज इतना आकर्षक था कि सर सुरेन्द्र का गुस्सा एक क्षण से अधिक टिक न सका। पराये आदमियों के सामने हम अपने मन का सुन्दर भाग प्रकट करते हैं। अपने आदमी के सामने ही हम क्रोध, चिड़चिड़ापन, अनिच्छा व्यक्त करके अनाकर्षक बनते हैं। घर से बाहर निकलते समय हम यथासम्भव अपने शरीर को सुन्दर बनाते हैं। घर में ही हम सुन्दर दीखना अपेक्षणीय नहीं समझते। बाहर ही की तरह यदि हम घर में भी अपने मानसिक सौन्दर्य और देह-लावण्य को बनाये रखें तो गृह-जीवन कितना उज्वल हो जाय!

आज कई वर्षों बाद मीनाक्षी के सौन्दर्य को सुरेन्द्र ने लक्ष्य किया। मिनाक्षी के अनुत्साह से वह अपमानित तो हुआ परन्तु वहाँ अधिक देर तक बैठ रहने को उसका मन चाहने लगा। मीनाक्षी में स्फूर्ति लाने की उसे इच्छा हुई। उसने बातचीत बढ़ाई :

'मीनाक्षी, तुझे किरीट की याद है?'

सुरेन्द्र को कहाँ पता था कि मीनाक्षी पिछले तीन दिनों से किरीट के ही नाम की माला जप रही थी! उसकी तो यह धारणा थी कि जैसे वह किरीट को भूल गया था वैसे ही मीनाक्षी भी भूल गई होगी। अत्यन्त सुख में रखी गई मीनाक्षी को किरीट की याद रहने का कारण भी क्या था?

'कौन? कालेज में जो तुम्हारे साथी थे वही न?' मीनाक्षी ने सुरेन्द्र की ओर टेढ़ी नजरों से देखते हुए कहा। सुरेन्द्र मीनाक्षी का नटखटपन देखकर हँसा :

'और क्या यह भूल गई कि तू एक बार उसके पीछे पागल हो गई थी?' और उसके हास्य में ऐसी ध्वनि थी कि मानो उस पागलपन

में डूबती हुई मीनाक्षी को उसी ने बचाया हो।

ऐसी चौकसी उसे क्यों रखनी चाहिये कि मीनाक्षी में वह पागल-पन फिर से जाग न उठे ! यह कौन कह सकता है कि कजलाती चिनगारी फिर से भभक न उठेगी !

दबा रखा—गाड़ रखा—कोई प्रबल भाव समय की अगणित तहों को चीरकर फूट निकले तो उसे रोक कौन सकेगा !

'उसका आज क्या है ?' समझ में न आया कि मीनाक्षी बात चालू रखना चाहती है या बदलना चाहती है।

'मुझे उस पर मुकदमा चलाना पड़ेगा।'

'चलाओ।' मीनाक्षी ने इस तरह से कहा मानो इसमें कुछ भी महत्त्व न हो।

'कैसा मूर्ख है ! मेरा मित्र होकर मेरे ही विरुद्ध इतना लिखता है !'

'क्या लिखते हैं ?'

'यह देखा एक सड़ा-सा सामाचार पत्र निकालता है और उसमें मुझ जैसे की आलोचना करने की हिम्मत करता है। परिणाम की उसे खबर नहीं है, शायद।'

'गरीब की हाय' का अंक सुरेन्द्र ने मीनाक्षी के हाथ में दिया।

पढ़कर मीनाक्षी ने सहज स्मित किया।

'वह यहाँ कब से आये हैं ?'

'क्या पता ! मुझे तो मेरे सेक्रेटरी ने यह पत्र बतलाया तब मालूम हुआ।'

'तुम्हारे पुराने मित्र हैं। उनसे मिलते क्यों नहीं ?'

'मैं मिलूँ ?' बड़े आदमी छोटे आदमियों से मिलने नहीं जा सकते, इस सिद्धान्त की याद दिलाते हुए सुरेन्द्र ने प्रश्न किया।

'तुम न मिलो तो उन्हें मिलने के लिए बुलाओ। यहाँ आने से पहले वह कहाँ रहते थे ?'

'क्या मालूम ! दस बारह वर्षों तक तो उसका कुछ पता ही न था।'

'तुमने कभी पता लगाने का प्रयत्न किया था।'

'किस लिए ! मुझसे मिलने की इच्छा होती तो यहाँ न आता ! कैसी बात लिखता है ! मुझे चोर लूट ले जाता है और वह उसका बचाव करता है !'

मीनाक्षी ने सर सुरेन्द्र को सलाह दी पर उसने खुद ही किरीट जैसे निम्न-श्रेणी के परिचित को बुलाना स्वीकार नहीं किया। अन्त में मीनाक्षी ने कहा :

'यदि मैं किरीटकान्त को बुलाऊँ त

'अपनी बात तू ही जाने, परन्तु निम्न-श्रेणी में पैदा हुए व्यक्ति सदा ओछे ही हुआ करते हैं। इन्हें ज्यादा बढ़ावा देने की आवश्यकता नहीं।'

मीनाक्षी को यह आलोचना पसन्द न आई। उसने बात बन्द कर दी। सुरेन्द्र को इससे आश्चर्य तो हुआ ही। मीनाक्षी का सौन्दर्य आज अनोखा हो गया था, परन्तु उसे दूसरा आश्चर्य यह हुआ कि बहुत दिनों बाद उसने इतनी लम्बी बात की। एक खास बात सुरेन्द्र भूल गया कि बहुत वर्षों बाद इस तरह प्रेम-पूर्वक वह मीनाक्षी के पास बैठा था, वह पास बैठता ही नहीं तो मीनाक्षी बात कहाँ से करती !

सुरेन्द्र ने आज कुछ और भी बातें कीं। अपने आपको महत्त्व देकर उसने दफ़्तर में होनेवाले काम का वर्णन किया। यूरोपियन सेक्रेटरी भी कितनी नम्रता से पेश आते हैं इसका उदाहरण दिया। हँसते हुए बतलाया कि किस तरह शासन व्यवस्था के बारे में महत्त्वपूर्ण मुद्दे रखकर उसने गवर्नर को चक्कर में डाल दिया था। संक्षेप में, इस तरह आत्मतुष्टि की भावना उसने प्रदर्शित की कि मंत्री पद मिल जाने पर अब संसार में उसके लिए कुछ भी करना बाकी नहीं बचा है।

मीनाक्षी बिना किसी उत्साह के यह सब सुनती रही। सुरेन्द्र के मन में बार-बार यह प्रश्न आया कि मीनाक्षी उसका जितना उत्साह क्यों नहीं प्रकट करती है ?

'मीनाक्षी, तू तो ऐसी की ऐसी ही रही। तुझे कुछ भी सुहाता हो, ऐसा नहीं लगता।'

'मुझे क्यों न सुहाएगा ?'

'सुहाता हो तो कोई ऐसा मुँह रखेगा ?'

'मुँह कैसा है ?'

'बहुत ही सुहावना ; पर मानो उसमें से प्राण निकल गये हों। ऐसा क्यों ? तेरी कान्ति कहाँ चली गई ?'

'प्राण चला गया इसलिए कान्ति भी चली गई।' मीनाक्षी ने एक सूखी हँसी हँसकर कहा।

मीनाक्षी के गाल पर एक हलकी-सी चपत मारकर सुरेन्द्र बोला : 'प्राण और कान्ति दोनों वापिस लाने पड़ेंगे, समझी ! देख ये वापिस आये ! मुझे दीख रहे हैं !'

मन्त्रियों के भाग्य में प्रेम-चेष्टाएँ अधिक नहीं लिखी होती हैं। पत्नी में प्राण और कान्ति वापस लाने से पहले उन्हें खबर दी गई कि शिक्षकों का एक प्रतिनिधि मण्डल—Deputation—उनसे मिलना चाहता है।

'यह तो एक आफत है।' सर सुरेन्द्र ने पत्नी को अकेली छोड़ते हुए कहा। उन्हें मिलने आने वालों की यह आफत बुरी नहीं लगी।

अकेली पड़ते ही मीनाक्षी सोचने लगी :

'किरीटकान्त क्यों नहीं आये ?'

उसने जुदे-जुदे कारण सोचे, बाहर जाने की आवश्यकता पर भी विचार किया। अन्त में निःश्वास लेकर कहा :

'क्यों आते ?'

११

हम को प्यारे आप हो,
आपे कुबजा पूर !
मधुकर को पंकज प्रिये
पंकज को प्रिय सूर !

—दयाराम

'अब खिड़की में कब तक खड़ी रहोगी?' मधुकर ने बड़ी देर से खिड़की में खड़ी चमेली से पूछा।

'आज सात दिन हुए। अभी तक किरीटकान्त आये नहीं। मुझे दो-तीन दिन में आने को कहा था।' चमेली ने जवाब दिया। वह खिड़की पर से हटी नहीं।

'पर इस तरह खड़ी रहोगी तो क्या वह शीघ्र आ जायेंगे?'

'आ भी जाँय! मैं तपस्या करती हूँ।' चमेली ने थोड़ा हँसकर उत्तर दिया। वह हँसी तो सही, पर उसका चेहरा अत्यन्त उदासीन था।

'तप ही करती हो तो बैठकर करो न? ऋषि-मुनि तो आराम से बैठकर तप करते थे।'

मधुकर कभी से आया हुआ था। उसे अकेला बैठाकर चमेली खिड़की पर जा खड़ी हुई थी। खिड़की से बाहर उसकी दृष्टि चिपक गई थी। चमेली को बात करने की भी फ़ुर्सत न थी। मधुकर अकेला

बैठा-बैठा कोई पुस्तक पढ़ रहा था और बीच-बीच में चमेली से बात करने का प्रयत्न भी करता जाता था। जब वह पढ़ता नहीं था और बात भी नहीं करता था तो खिड़की की ओर मुँह किये खड़ी हुई चमेली को देखता था। सभ्य और लज्जाशील युवक भी, जब युवती का ध्यान कहीं और हो तब, उसके शरीर को कौतूहल, आश्चर्य और मोह भरी दृष्टि से देखे बिना रह नहीं सकता। उस मोह को पाप-पूर्ण ही मानकर धिक्कारने की आवश्यकता नहीं है। उस मोह में से पुण्य का समुद्र भी प्रकट हो सकता है। चित्र-विचित्र परिधान धारण करनेवाली उषा या इन्द्रधनुष का दुपट्टा ओढ़नेवाली बदली यदि दृष्टि को लुभा ले तो इसमें आँखों का क्या दोष! और उस पागलपन में पाप कहाँ छिपा होता है! यकसाँ विकसित अवयवों के माधुर्य को अर्धपारदर्शक आवेष्टन में अवगुंठित कर, आरसा में निहारती अप्सरा जैसी ताज-महल की सजीव प्रस्तर मूर्त्ति, या शिल्प सौन्दर्य के इन्द्रजाल के दर्शक को घसीट ले जानेवाली आबू के मन्दिर की कोई जादू भरी छत, मनुष्य को पलक भी न गिराने दे तो इसमें आदमी का क्या दोष है! सौन्दर्य देखने के लिए है। देखकर पागलपन में से भक्ति प्रकट होती है और लोलुपता भी प्रकट होती है। इस लोलुपता के डर से क्या सौन्दर्य देखा ही न जाय! यह कभी हो सका है! और हो सका हो तो कभी सफल भी हुआ है!

'गाड़ी का समय तो हो गया है न!' चमेली ने मधुकर की ओर मुड़कर पूछा। चमेली ने अनुभव किया कि मधुकर को अकेले बैठाये रखने में असभ्यता मालूम पड़ती है।

'गाड़ियाँ तो बहुत-सी आती हैं और तुम किस ओर की गाड़ी के बारे में पूछती हो!'

'दोनो ओर की; आनेवाली और जानेवाली। अब दो घण्टे तक एक भी गाड़ी नहीं है।'

किरीट के लिए सारे दिन की गाडियाँ याद रखनेवाली चमेली की आतुरता देखकर मधुकर विस्मित हुआ। उसने साफ-साफ देखा कि किरीट के बिना चमेली को बिलकुल अच्छा नहीं लगता है। चमेली की उदासीनता दूर करने के लिए मधुकर ने पूछा :

'तुम ताश खेलती हो ?'

'नहीं !'

'शतरञ्ज खेलना अच्छा लगता हो तो एक बाजी जमाई जाय ?' यह याद आते ही कि किरीट कभी-कभी शतरञ्ज खेलता है, मधुकर ने उसका प्रस्ताव किया।

'ऊँहूँ। थोड़ी देर खेलती हूँ कि इसके बाद मोहरा आगे ही नहीं बढ़ता।' इतना कहकर चमेली खिड़की पर से हटकर मधुकर के पास आ बैठी। मधुकर संकुचित हो गया। नक्षत्र-समूह में दिव्य चित्रों की कल्पना करनेवाले रसिक के गले में अचानक कहीं कोई नक्षत्र-माला आ पड़े और वह जिस तरह से विह्वल हो जाता है वैसी ही विह्वलता चमेली के पास आने पर मधुकर को हुई।

'कहीं घूमने चलना है ?' मधुकर ने पूछा।

'नहीं। मेरा सिर दर्द करता है।'

'मैं सिर दबा दूँ ?' मधुकर ने पूछा।

इस सवाल के पूछे जाते ही चमेली की आँखें आँसू से भर आईं। मधुकर दुःखित हो गया। उसने महसूस किया कि इस एकाकिनी युवती की ओर, जिसकी रक्षा का भार उसे सौंपा गया है, अतिशय चिन्ता प्रकट कर उसने भारी भूल की है। किसी के दर्द करते हुए सिर को दाबने में हानि कुछ भी नहीं है, परन्तु यह निश्चित न हो सकने से कि स्त्री का सिर दाबने का अवसर खोजनेवाला पुरुष ऐसा करके स्त्री का दुःख कम करता है या अपना, सब कोई इस कार्य की ओर सशंक दृष्टि से देखते हैं। मधुकर बेचारा हर तरह से चमेली को प्रसन्न रखना

चाहता था। उसके इस प्रयत्नों को चमेली ने स्वार्थ और बदमाशी से पूर्ण तो न समझा ? अन्यथा वह यों आँसू क्यों बहाने लगती ?

'मुझसे भूल हुई। मुझे क्षमा करो। यदि कोई अनुचित बात मेरे मुँह से निकल गई हो तो...'

क्षमा माँगते हुए निर्दोष मधुकर को मुर्झाते देखकर चमेली रोती-रोती भी हँस पड़ी। आँख के आँसू सूखे नहीं और रोने की दयनीय मुख मुद्रा में ही हँसी का फूट निकलना क्या अनोखा दृश्य नहीं है ?

'तुमने कहा ही क्या है ? तुम तो उलटे मुझे सुखी रखने के लिए ही इतना सब कुछ करते हो ! मेरी तकदीर ही ऐसी है !' हास्य और रुदन की सम्मिलित छायावाले चेहरे को पोंछती हुई चमेली बोली।

और नीचे मोटर का भोंपा बजा। चमेली इस भोंपे को पहिचानने लग गई थी।

'रोज प्राण खाती है !' वह बड़बड़ा उठी।

किरीट के जाने के बाद दूसरे दिन से नित्यप्रति मीनाक्षी की मोटर दिन में दो-एक बार यहाँ आती थी और शोफर हर बार भीतर आकर पूछ जाता :

'क्या किरीट भाई आ गये ?'

चमेली रोज ही इनकार कर देती। यह नित्य का कार्य-क्रम आज दूसरी बार हुआ। शोफर ने भीतर आकर पूछा :

'किरीट भाई आ गये ?'

'नहीं !' चमेली ने नियमित उत्तर दिया। 'आ जाने पर मैं तुम्हें खबर दे दूँगी।'

शोफर हर रोज यह पूछकर लौट जाता था। आज उसने चमेली को एक पत्र दिया।

चमेली चिट्ठी पढ़ रही थी तब शोफर ने मधुकर को देख लिया।

पहले भी दो-एक बार उसने उसे यहीं देखा था। परन्तु शौफर के चेहरे पर से यह जानना मुश्किल था कि इन दोनों युवक-युवतियों को देखकर उसने अपनी मनमानी—दुनियादारी की—कल्पना कर ली है या नहीं।

चमेली ने पत्र मधुकर को दिया। मधुकर ने पढ़कर कहा :

'तो जाओ। लेडी मीनाक्षी ने बुला भेजा है तो गये बिना कैसे चल सकता है ?'

'मैं अकेली जाऊँ ?'

'हाँ, इसमें क्या है ? और यदि तुम चाहो तो मैं साथ चलूँ।'

चमेली ने मधुकर को साथ ले चलना तै किया।

'पर ठहरो। आज मैंने तुम्हें कुछ भी नहीं दिया। मैं अभी चाय बनाकर लाई।' चमेली बोली। मधुकर के बहुत टालमटोल करने पर भी चमेली ने उसे चाय पिलाई।

पिछले पन्द्रह-बीस वर्षों से भारतीय अतिथि-सत्कार में चाय बहुत ही उपयोगी साधन हो गया है। स्वभाव से ही भारत अतिथि-सत्कारी है। काम-काज का बाहुल्य, लम्बे—एक रात के लिए भी—आतिथ्य भोगने की अनिच्छा या असुविधा, अतिथियों की कुटुम्बों में हिलमिल जाने की अशक्ति और अतिथियों से होनेवाली असुविधाओं को सह लेने का हमारे स्वभाव में होता हुआ परिवर्तन ; इन सब कारणों को लेकर वर्तमान काल का आगत-स्वागत सरलता से तैयार हो जानेवाली चाय में सन्निहित होता जाता है। आतिथ्य-सत्कार की भावना नष्ट नहीं होती है, इसलिए भारतीय * मध्यम वर्ग के परिवार अतिथियों को दिन-रात में किसी भी घड़ी चाय पिलाने को तैयार रहते हैं। दोपहर को बारह बजे या रात के दस बजे किसी के यहाँ जाने का

* मूल में 'भारतीय' के स्थान पर 'गुजराती' है।—अनु०

प्रसंग आने पर सर्वव्यापी चाय के दर्शन अवश्य होते हैं और हम लोग भी इस चाय-पान के प्रति इतने लालायित हो उठे हैं कि दिन-रात में किसी भी घड़ी, कहीं जाने पर, यदि भाग्य से बिना चाय पिये ही लौट आना पड़े तो हमारी अन्तरात्मा पुकार उठती है :

'कैसे आदमी हैं! चाय का एक प्याला भी नहीं!'

चमेली और मधुकर दोनो साथ-साथ निकले। बेपरवाही से घर में ताला लगाया और चाभी दरवाजे के ऊपरवाली दराज में रख दी। किरीट का आना-जाना सदा ही अनियमित होने से चमेली जब स्त्री-समाज में जाती थी तो चाभी दरवाजे के ऊपरवाली दराज में ही रख जाती थी। जिनके पास सम्पत्ति नहीं होती उन्हें उसके खो जाने का भय भी नहीं होता। संसार में अनेकों प्रकार के भय होते हैं, परन्तु उन सब में अपनी सम्पत्ति खोये या चुराये जाने का भय इतना प्रबल और व्यापक होता है कि उसके आगे बाकी और सब भय निर्भयता क श्रेणी में गिने जाते हैं। किरीट के घर में से कुछ खो जाने का भय था ही नहीं। टूटी कुर्सी या फटी चटाई को चुराने को किसी का मन नहीं ही होगा। और यदि कोई ऐसी वस्तु भी चुराने की मूर्खता करे तो उसे आशीर्वाद सहित चुरा लेने देना चाहिये।

मोटर चल दी। चमेली के आनन्दी स्वभाव को मोटर के धक्के भी मनोरंजक मालूम पड़ रहे थे। किरीट की अनुपस्थिति में दुःखित हो रही, समीप बैठे हुए मधुकर को भी भूली हुई चमेली मधुकर की ओर देखकर हँसने लगी।

जीवन में प्रथम बार ही नारी की निकटता का अनुभव करता हुआ मधुकर स्वप्न देखने लगा।

परन्तु अनुभवहीन युवक के सिवा यह मानने की भूल और कौन करेगा कि नारी की मुसकराहट उसकी स्वीकृति का ही पर्याय है? परन्तु इसके लिए अनुभवहीन युवक ही को दोष क्यों दिया जाय? नारी की

मुसकराहट की भूलभुलैया में पड़े हुए अनुभवी भी कब बाहर निकले हैं ?

चमेली ने पूछा : 'तुम्हें हँसना आता भी है या नहीं ?'

चमेली की हँसी में सहयोग देना चाहिये, इस शिष्टाचार को भूला हुआ मधुकर तो चमेली के हास्य में मोगरे की कलियाँ खिलने का आश्चर्यमय आनन्द देख रहा था। अपने आप से बेखबर मधुकर हँसने के लिए झूठी हँसी हँसा। रास्ता ठीक आ गया। मोटर की उछल-कूद बन्द हो गई। चमेली का हृदय उछलने लगा।

'मीनाक्षी ने किस लिए बुलाया है ?'

उसे मीनाक्षी से डर मालूम होने लगा। लेडी मीनाक्षी, सुख संपत्तिवान मीनाक्षी किस लिए इस ग़रीब लड़की में भय पैदा कर रही थी ? मीनाक्षी को किस चीज़ की कमी थी ? और कमी थी भी तो वह चमेली के पास से क्या लेकर उसकी पूर्ति करती ?

एकाएक उसकी आँखों के आगे किरीट की मूर्ति आ खड़ी हुई। उसे यही मालूम पड़ता कि मोटर के सामने उसने किरीट को देखा। मोटर जल्दी से आगे बढ़ गई। बीतते हुए समय की स्थूल मूर्ति जैसी मोटर कैसे रोकी जा सकती थी ?

'अरे ! किरीटकान्त गये हैं न ?' चौंककर चमेली ने मधुकर से पूछा।

मधुकर को कुछ भी पता न था। वह तो लुकछिप कर चमेली ही को देख रहा था और जब देख न पाता तो उसका स्मरण करता था। उसे क्या मालूम कि मोटर के बाहर क्या हो रहा है ? और कौन जा रहा है ?

'मैंने तो नहीं देखा। इस रास्ते कभी नहीं आते।' मधुकर ने जवाब दिया।

अहर्निश किरीट ही का भजन करनेवाली चमेली की ओर उसने

आँख फाड़कर देखा। चमेली के चेहरे पर घबराहट छाई हुई थी। उसके किरीटकान्त को कोई ले जाय तो? कहीं वह आप ही खो गया तो?

मीनाक्षी ही उसे छीन ले जाय तो?

चमेली काँप उठी। उसे जो यह आभास हुआ था कि मीनाक्षी उस रात किरीट के साथ थी वह सच है या झूठ? मीनाक्षी और किरीट का अपना पूरा-पूरा हाल नहीं बतलाने में क्या रहस्य है? मीनाक्षी की मोटर रोज किरीट का पता लगाने क्यों आती थी? सब बहाने तो नहीं हैं? मीनाक्षी थोड़ी देर पहले ही किरीट को ले गई हो तो? किरीट को उसने छिपा दिया हो तब? नहीं तो उसे सात-सात दिन क्यों लगते? कहीं यही सब कहने और हँसी करने के लिए ही तो मीनाक्षी ने उसे नहीं बुलाया है?

मीनाक्षी का महल आ गया। चमेली को वापिस लौट जाने की प्रबल इच्छा हो आई। ऐसा कोई बहाना नहीं किया जा सकता कि इस महल में जाने की अपेक्षा वह अपनी झोंपड़ी में ही लौट जाय?

उसने अन्तिम प्रयत्न किया।

'किरीटकान्त आ गये होंगे तो?' मोटर में से उतरते हुए चमेली ने मधुकर से पूछा।

'तो क्या?' उसने पूछा।

'हम यहाँ और घर में ताला लगा है!' चमेली ने व्यर्थ का बहाना किया।

'चाभी तो ठीक ठिकाने से रखी है। आ गये होंगे तो बैठेंगे।'

'मुझे घर वापिस जाना है।'

'अब कैसे हो सकता है? मीनाक्षी के पास अधिक देर तक मत बैठना।'

सीढ़ियाँ चढ़ते हुए उसने महसूस किया कि वह किसी लुटेरे के

महल में जा रही है। दूसरी सीढ़ी पर पाँव रखते ही उसने अपनी दृष्टि दूसरी ओर फिरा ली। गवाक्ष में से मीनाक्षी की शांत, संस्कृत पर कुछ परिश्रान्त दृष्टि चमेली को निहार रही थी। मीनाक्षी का मुख देखकर चमेली को लगा कि उसने मीनाक्षी को लुटेरी समझने में भूल की है।

क्या लुटेरे सभी बदसूरत ही होते हैं ? कल्पना चोर-डाकुओं को डरावना ही देखती है। चोर यदि अपनी नकाब उतार डाले तो कई बार कामदेव से भी अधिक सुन्दर दीख पड़े।

चमेली सोत्साह ऊपर चढ़ी। चढ़ते-चढ़ते उसे अनेक बार व्यथित कर देनेवाला विचार आया :

'मेरा और किरीट का क्या सम्बन्ध ?'

●

१२

बहु वेला दुःखो स्हेर्ता फाटी आ दिल छे गयुं ;
भले व्होये पणे गाढां उखेलुं तुज पास हुं । *

—कलापी

मधुकर को बुलाया नहीं था इसलिए उसे बाहर के कमरे में बैठना पड़ा। चमेली को मीनाक्षी ने आदमी भेजकर अपने कमरे में बुलाया और बिलकुल अपने पास बैठाया। निकट से मीनाक्षी का चेहरा देखकर चमेली को लगा कि वह लुटेरी तो कदापि नहीं है ; और प्रेम-पूर्वक जब मीनाक्षी ने उसे बि ,कुल अपने पास बैठाया तो चमेली के मन में से बचा-खुचा विरोध भी नष्ट हो गया। मीनाक्षी उसे मित्र जैसी दिखाई दी।

'चमेली, तू आई ! बहुत अच्छा हुआ। तुझे देखकर मुझे मेरी छोटी बहिन याद आ जाती है। तेरे बराबर ही है।' मीनाक्षी ने चमेली को पास बैठाकर कहा।

चमेली का चेहरा प्रफुल्लित हो गया। उसने प्रेम-पूर्वक मीनाक्षी की ओर देखा। ऐसी दृष्टि स्त्री-मित्रों के बीच ही सम्भव हो सकती है। उसने कहा :

'अपनी बहिन को यहीं बुला लो न !'

---

* बहुत समय से दुःख सहते-सहते यह हृदय फट गया है। चाहे अश्रु गाढ़े ही क्यों न पड़ जायँ मैं इसे तेरे सामने खोलता (उघाड़ता) हूं।

'बुलाऊँगी। पर देख, बिना विशेष परिचय के मैं तुझे 'तू' कहती हूँ, बुरा तो नहीं लगता।'

'बिलकुल नहीं, इसमें क्या ? तुम बड़ी हो और मुझे तो सब इसी तरह से सम्बोधन करते हैं। मुझे यही अच्छा भी लगता है।'

सचमुच, कितने ही व्यक्तियों की सरलता और चापल्य केवल एक वचन में ही संबोधित होने की अपेक्षा रखता है। कितने ही स्त्री-पुरुष इतने भारी-भरकम होते हैं कि उनकी अनुपस्थिति में भी उनके लिए बहुवचन के सिवा और कोई प्रयोग कठिन हो पड़ता है।

मीनाक्षी ने चमेली का हाथ पकड़ा और धीरे-धीरे उसकी चूड़ियाँ खनखनाईं। चूड़ियाँ आपस में टकराईं या मिलीं ? और उनमें से निकलनेवाली कर्ण-प्रिय टुनटुनाहट ने कमरे के शांत और सुसज्जित वातावरण में माधुर्य की सृष्टि कर दी। स्त्रियों के कंठ भी माधुर्य की सृष्टि करने के लिए ही बनाये गये हैं। उनके हृदय भी। तो फिर संसार में—जीवन में—कर्कशता कहाँ से आती है ? नारी माधुर्य का समूह ही तो है।

ये दोनो स्त्रियाँ आपस में एक दूसरे की मधुरता का आस्वादन करने लगीं। इधर-उधर की बातों से एक दूसरे का विश्वास सम्पादित होने का निश्चय होते ही अनुभवी मीनाक्षी ने निजी बातें पूछनी शुरू कीं। नारी-हृदय कई बार इतना सरल हो जाता है कि वह कुछ भी गोपनीय नहीं रख सकता। घनी से घनी वेदना या अत्यधिक आनन्द को ऊपरी सतह पर व्यक्त करने में नारी-हृदय संकुचित नहीं होता। दो सहेलियों की एकान्त वार्ता को चोरी से सुननेवाला ही इस बात को सरलता से समझ सकता है।

'बहिन एक बात पूछती हूँ। बुरा तो नहीं मानोगी ?' मीनाक्षी ने पूछा।

चमेली जीती जा चुकी थी। मीनाक्षी के एक भी प्रश्न से अब उसे

बुरा नहीं लग सकता था।

'पूछो न। बुरा क्यों लगेगा? फिर मैंने ऐसा कुछ किया ही नहीं है कि छिपाने की आवश्यकता पड़े।' चमेली को सहज विचार आया कि मीनाक्षी अमुक बात पूछना चाहती है।

'वैसे नहीं। मैं तो महज जानकारी के लिए पूछती हूँ। तेरा और किरीटकान्त का क्या सम्बन्ध है?' मीनाक्षी की सर्वदा शान्त रहनेवाली आँखों में थोड़ी-सी चमक आ गई।

किसी और ने यह प्रश्न पूछा होता तो चमेली को बुरा लग जाता। पहले ऐसी ही एक बात पर उसने अपना भयंकर अपमान समझा था और उसे लेकर एकदम स्त्री-समाज में जाना ही बन्द कर दिया था, परन्तु उसे यह पूरा विश्वास था कि मीनाक्षी निन्दा या कुचेष्टा करने के लिए यह प्रश्न नहीं पूछ रही है। चमेली ने निश्चय किया कि किरीटकान्त को बारम्बार खोजनेवाली इस उच्च पदवी-धारिणी स्त्री को इस प्रश्न का समुचित उत्तर देना आवश्यक भी है। उसके मन में यह अक्सर आया करता था कि मीनाक्षी किसी दिन ऐसा प्रश्न अवश्य पूछेगी। उसने सीधा सादा जवाब दिया :

'मेरा और किरीटकान्त का कोई सम्बन्ध नहीं है।'

'तो तेरा और उनका परिचय कैसा?'

चमेली का हँसता हुआ चेहरा एकदम दयनीय हो गया। एकाएक इस तरह का परिवर्तन देखकर मीनाक्षी भी सोच में पड़ गई। उसने चमेली की आँखों में आँसू देखे। उसे अनुकंपा हो आई। कुछ कंपित स्वर में चमेली ने कहा :

'बहिन, दुनिया में मेरा अपना कोई नहीं है। मुझ निराश्रिता को किरीटकान्त आश्रय देते हैं : बस हमारा यही सम्बन्ध है और यही हमारा परिचय।'

मीनाक्षी समझ न सकी। समझ सकी हो तो भी उसने अधिक

स्पष्टता करवानी चाही। किरीट का किसी भी स्त्री के साथ कुछ भी रिश्ता-नाता नहीं है, यह बात निश्चय-पूर्वक जानने की मीनाक्षी में तीव्र इच्छा जाग्रत हुई। उसने पूछा :

'तू कहाँ की है?'

'मैं? मैं गुजरात की हूँ।'

'तेरे सगे-सम्बन्धी कहाँ हैं?'

'जहाँ भी हैं—मेरे बिना—सुख में हैं!' कहकर चमेली ने साड़ी के आँचल से आँखें ढक लीं।

मीनाक्षी की समझ में आ गया कि उसने चमेली से बहुत ही हृदय-वेधक प्रश्न पूछे हैं। अपने घर निमंत्रित कर उसे इस तरह रुलाना मीनाक्षी को बहुत ही क्रूर लगा। और फिर भी वह प्रश्न पूछ बैठती थी। चमेली से अभी और भी पूछना बाकी था। मीनाक्षी ने चमेली के गले में हाथ डाला और धीरे से उसका हाथ दूसरे हाथ से हटाकर चमेली के आँसू पोंछे।

'चमेली, मैं बहुत क्रूर हूँ। मुझे यह सब नहीं पूछना चाहिये था। मैं नहीं जानती थी कि तुझे इतना दुःख होगा।'

चमेली ने आँखों पर से आँचल हटा लिया और मीनाक्षी की ओर देखा। देखकर वह हँसी। पाले से सूखी हुई पुष्प पंखड़ी जैसी उसकी आँखें गीली होते हुए भी अश्रु रहित थीं। वह बोली :

'मेरी बात सुननेवाला है ही कौन! तुम पूछो और मैं न कहूँ ऐसा हो ही नहीं सकता। यह तो नहीं कहूँगी कि मुझे अपनी जिन्दगी की बातें याद करके दुःख नहीं होता, परन्तु आज तक मुझसे किसी ने नहीं पूछा कि मैं कौन हूँ; जो जिसकी समझ में आता है वैसी कल्पना कर लेता है।'

चमेली को आप-बीती सुनाने की बहुत इच्छा हुई। दुःख की बात याद करने से दुःख ही होता है; परन्तु यदि कोई उस दुःख को

समझनेवाला हमजोली मिल जाय तो दुःखी का दुःख-कथन ही दुःख की दवा हो जाता है।

मीनाक्षी उसकी आत्म-कथा सुनने को तैयार हो गई। चमेली ने भी सोचा कि अपनी बात कह ही डालनी चाहिये। वह बोली :

'बहिन, मेरे मा भी है और बाप भी है। दूसरे सगे-सम्बन्धी भी बहुत-से हैं, परन्तु किसी को मेरी परवाह नहीं। कभी अकेली होने पर किसी की याद हो आती है तो रोना आ जाता है, परन्तु अब तो रोना भी कम पड़ गया है।

'छः-सात साल हुए मेरे पिता को व्यापार में भारी नुकसान उठाना पड़ा। उनकी सब सम्पत्ति छिन गई और मेरे माता-पिता मेरे काका के यहाँ भाग आये। मेरे काका मेरे पिता से बड़े थे। कुछ रुपए देकर उन्होंने मेरे पिता की जेल जाने से रक्षा की। काका बहुत ही कठोर थे। फिर उन्होंने हमें आश्रय दिया था इसलिए काका, काकी और उनकी सन्तान यही मानते थे कि हमें एक क्षण-भर के लिए भी उनका अहसान नहीं भूलना चाहिये। घर का सब काम-काज मेरे और मेरी मा के सिर आ पड़ा। मेरे पिता तो एकदम टूट गये थे। हमारे साथ ऐसा बर्ताव किया जाता था मानो हम काका के गुलाम ही हों। मेरे पिता इन सब दुखों को सह न सके। वह बिलकुल व्याकुल हो गये और थोड़े ही दिनों बाद उनका मस्तिष्क शून्य हो गया। उनकी आँखों में से बुद्धि नष्ट हो गई और वे सूनी-सूनी दिखने लगीं। सबने उन्हें मूर्ख मानकर और भी मूर्ख बना दिया।

'ननिहाल में मेरे मामा थे। परन्तु पिता की ऐसी स्थिति में मा ने ननिहाल जाकर रहना उचित न समझा। मैं तो बड़ी थी ही सही। बड़ी बेटी सौ साँपों का बोझ होती है। जैसे बने वैसे मुझे जल्दी से ठिकाने लगाने की काका ने तजवीज शुरू की और सभी मेरे लग्न की उतावली करने लगे।

'मुझसे विवाह करने के लिए बहुत से तैयार थे।' थोड़ा-सा हँसकर चमेली ने यह प्रसंग शुरू किया : 'परन्तु उन सभी में एक व्यक्ति बेहद उतावला था। उसने तीन-तीन बार विवाह किये थे; परन्तु तीनों बार उसकी पत्नियाँ मर गईं। पत्नी की उन्हें इतनी आदत पड़ गई थी कि वे पत्नी बिना रह ही नहीं सकते थे और मुझे अपनी चौथी बार की पत्नी बनाने का उन्होंने विचार किया।

'लड़की का विवाह करने में लड़की से पूछने की आवश्यकता ही क्या है ? मेरे काका ने मेरे लिए अपने मन की पसन्दगी कर ली और मेरे विवाह की जल्दी से तैयारियाँ शुरू कर दीं।'

'तो क्या तू विवाहित है ?' मीनाक्षी अपनी उत्कण्ठा को दबा न सकी। उसने बीच में ही पूछा।

'तुम सुनो तो सही ! मेरी मा ने इस सम्बन्ध का विरोध किया। उसने यहाँ तक कहा कि मुझे लड़की बेचना नहीं है। अड़ोसी-पड़ोसियों में भी बात होने लगी कि दस हजार रुपए लेकर काका ने वहाँ मेरा विवाह करना तै किया था।

'मुझे उस व्यक्ति से कुछ द्वेष न था। किसी को चार बार विवाह करने की आवश्यकता पड़े तो भले ही करे ! परन्तु इस में मुझे एक आपत्ति थी। वह मैंने अपने काकी की लड़कियों और काकी को कह सुनाई।

' "काकी, मुझे क्यों उनके साथ ब्याहती हो ? वह तो तीन बार शादी कर चुके हैं, तो फिर किसी तीन बार की विवाहिता स्त्री के साथ ही उनका लग्न करो न ?" '

चमेली के साथ मीनाक्षी के चेहरे पर भी मुसकराहट छा गई। चमेली ने अपनी बात आगे बढ़ाई :

'मैं बहुत ही उद्धत, स्वेच्छाचारी और बिगड़ैल समझी जाती थी। सगे-सम्बन्धियों के आश्रय में पड़ी हुई सभी लड़कियों को इन विशेषणों

से विभूषित होना पड़ता होगा।

' "इस छोकरी की तो जीभ ही काट डालनी पड़ेगी। घर के घर ही नहीं समाती है तो पराये घर कैसे समायेगी?" काकी ने मेरे भविष्य से चिंतित होकर मुझे धमकाया। काका ने यह बात सुनी तो सारी गाली बककर मेरी फजीहत की।

'मेरी मा ने चुरा-छिपाकर मेरे मामा को इस बारे में पत्र लिखा। मामा ने काका को पछाड़ने के लिए कमर कसी और तीसरे ही दिन मामा का पत्र आया कि चमेली का विवाह तै कर दिया है। घर और वर बहुत अच्छे हैं।'

'मैंने न तो कभी उस घर को देखा था और न कभी उस वर ही को। गुप्त रूप से पता लगाने पर मुझे मालूम हुआ कि वर दो बार विवाह कर चुके हैं। तीन बार के विवाहित से दो बार का विवाहित ज्यादा अच्छा! ऐसा विचार मुझे तब आया था या नहीं, यह तो मैं आज कह नहीं सकती। परन्तु उस पत्र ने मेरे काका के बोल-चाल और व्यावहार में एक विचित्र परिवर्तन कर दिया।

' "अपनी लड़की का मैं विवाह करूँगा। वह मामा हुआ तो क्या? लड़की मेरी है। देख लूँगा कि कौन बीच में पड़ता है?"

'अब मेरा महत्त्व इतना अधिक बढ़ गया कि मेरे मामा से मेरी रक्षा करने के लिए पहरेदार नियुक्त किये गये। फिर घण्टे-घण्टे पर घर का हर कोई आदमी आकर मुझे खबरदार कर जाता था कि :

' "देखना, जो यहाँ से जरा भी हिली तो..."

'इस 'तो' के बाद हर प्रकार की धमकियाँ दी जाती थीं। दो-एक दिन बाद तो मेरी मा ने आकर एक सलाह दी :

' "चमेली अदालत में यदि साहब तुमसे पूछें तो कहना कि मैं तो अपने मामा के घर जाना चाहती हूँ, समझी?" '

'मैं समझ गई। मुझे अपने आश्रय में लेने के लिए मेरे मामा ने

सरकारी सहायता लेनी शुरू की थी। मैंने कहा :

' "परन्तु मा, यह सब झगड़ा किस लिए? यह मेरा विवाह ही न करो तो कितना अच्छा हो?"

' "तू जन्मी ही न होती तो कितना अच्छा होता?" मा ने कहा। मेरा जन्म उसे इतना अधिक असह्य हो पड़ा था।

'इतने में काका चिल्लाये :

' "भीतर कौन गया है? चमेली के पास?"

'एक शब्द भी और बोले बिना मेरी ओर शीघ्रता से देखती हुई मा वहाँ से भाग गई। मैं काका के घर तनहाई में बन्द थी।

'रात के बारह बजे काका ने आकर मुझे जगाया :

' "चमेली, बेटा, देख हम अभी बाहर गाँव जायेंगे। तू डरना मत हो! मैं साथ ही हूँ।"

'मैंने पहली बार काका के शब्दों में मधुरता का अनुभव किया, परन्तु मैं समझ गई थी कि यह मधुरता मुझे गुदड़ी में ले जाकर बेचने के लिए है। मैंने कहा :

' "मुझे यहाँ से कहीं नहीं जाना है। मेरी मा कहाँ है?"

' "पगली! तेरी मा बिना तुझे भेजेंगे! वह भी नीचे तैयार ही है।"

' "नहीं। उसे यहीं बुलाओ। तभी मैं जाऊँगी।"

' "देख, तेरे लिए कैसे अच्छे-अच्छे गहने व कपड़े लाया हूँ! पहिन ले और समझदार हो जा। और दूसरे गहनों का मन हो तो मैं कल सवेरे मँगवा दूँगा।"

'मुझे पुरुषों की ऐसी समझ का पूरा अनुभव है कि गहनों से चाहे जिस स्त्री का मन जीता जा सकता है। शायद यह सच हो, अधिकांश में ऐसा ही होता हो; परन्तु गहने-कपड़ों ने मुझे कभी भी आकर्षित नहीं किया।'

चमेली की यह बात सुनकर मीनाक्षी ने उसकी ओर से अपनी दृष्टि हटा ली। वह नीचे की ओर देखने लगी। उसने अपने शरीर पर दृष्टि डाली, कमरे के साज-शृङ्गार पर दृष्टि डाली और फिर चमेली की बात आगे सुनने के लिए कहा :

'हुँ।'

चमेली ने सोचा कि उसने अपनी वैभव-शालिनी सहेली की टीका की है, परन्तु मुँह से निकलते हुए शब्दों को वापिस खींच लेना संभव नहीं था।

'काका ने मेरे पास गहने-कपड़े रख दिये। मैंने गठरी उठाकर जोर से दूर फेंक दी। कमरे में सब गहने-कपड़े अस्त-व्यस्त बिखर गये।

'अब मेरे काका में सारी दुनिया का क्रोध आ गया। क्रोधी आदमी की जबान की नोक पर ही गाली बसती है। स्त्री को गालियाँ देने में किसी को हीनता नहीं दिखाई देती। वह जोर से तो नहीं चिल्लाया, परन्तु चिल्लाने से भी अधिक क्रूर धीमी आवाज़ में बोला :

' "जो गड़बड़ की तो मार ही डालूँगा। चल, आगे हो।"

'मारे डर के मेरा कलेजा काँप उठा। तो भी मैंने साहस से कहा :

' "मेरी मा को बुलाओ। उसके बिना मैं यहाँ से नहीं हटूँगी।"

' "अच्छा ? यहाँ तक मिजाज ? देखूँ तू कैसे नहीं चलती है ?" इतना कहकर काका ने तीन हट्टे-कट्टे आदमियों को बुलाया। मैं जमीन पर बैठ गई। वे आदमी मुझे घसीटने लगे। घसीटने में मैंने उलटा जोर लगाया तो दो-चार बर्तन खड़खड़ाते हुए जमीन पर आ गिरे। मेरा काका उस खड़खड़ाहट को सह न सका। कुर्सी का एक पाँव टूटा हुआ पड़ा था। उसका हाथ उस पर जा पड़ा। मुझ निर्दोष को उसने पूरी शक्ति से वह पाँव मारा।

'जन्म में पहली ही बार मैंने मार का अनुभव किया। मेरी आत्मा मुमूर्षित हो गई। मेरे हृदय और शरीर में से वज्र निकल गया। मैं

निष्प्राण-सी हो गई। अगर फिर वह पाँव पड़ा तो क्या होगा। इस डर से मैं काँपने लगी। डर और दुःख से मैं स्वाभिमान रहित हो गई। उस समय दो सौ वर्ष के बूढ़े से भी विवाह करने के लिए मैं तैयार हो जाती। बहिन, शरीर-कष्ट सहना बहुत ही कठिन है।

'मुझे उठाकर तीनों आदमी चल दिये। मुझे एक गाड़ी में डाल दिया। मुझे न रोने की सुधि रही, न कुछ पूछने की। मुझे ऐसा भान हो रहा था मानो मैं कोई भयानक स्वप्न देख रही हूँ।

'लगभग तीन घण्टे इस तरह गाड़ी में बिताये। पिछली रात की भयंकर शान्ति में गाड़ी एक जगह खड़ी हुई। मैंने आस-पास देखा तो थोड़ी ही दूर पर दीपक जलते हुए दिखाई पड़े। अँधेरे में मुझे ऐसा मालूम पड़ा मानो हम किसी छोटे-से स्टेशन पर आये हों। एक आदमी ने मुझसे कहा :

' "देख, चुपचाप उतर जा!"

' "मैं उतरने लगी। इतने में गाड़ी में बैठे हुए दूसरे आदमी ने मुझे छुरा दिखलाकर धमकी दी :

' "जरा-सी भी चिल्लाई या भागने की कोशिश की तो छुरा छाती में घुसेड़ दूँगा।"

'मार—शारीरिक वेदना—मुझे अतिशय कायर बना सकती थी; फिर भी मैंने इतना पूछा :

' "मुझे कहाँ ले जाते हो?"

' "तेरा विवाह करने।"

' "मेरे काका कहाँ हैं?"

' "काका 'मरी' गये हैं।" हँसकर एक आदमी ने जवाब दिया। मैं चौंकी। मैंने फिर पूछा :

' "मेरी मा कहाँ है?'

' "तेरी मा 'कोटे' में है।"

'तीनों आदमी हँसने लगे। 'मरी' और 'कोटे' * जैसे स्थानवाचक नामों का उपयोग कर, अति प्राचीन हँसी से आनन्दित होनेवाले उन मनुष्यों की भयंकरता यदि मैंने देखी न होती तो मैं अवश्य ही उनका उस हँसी के लिए तिरस्कार करती।



---

* 'रामपुर' और 'सुरपुर' जैसे अर्थवाही शब्द।

१३

भुवन भुवन मदननाँ महाराज्य रे,
गाव-गाव गीत मदनराजनाँ, सखि ! *

—न्हानालाल

'स्टेशन इतना छोटा और रात का समय ऐसा विकट था कि उस समय वहाँ पर कोई यात्री दिखाई न दिया। स्टेशन के दफ्तर से हम दूर बैठे। हम में से एक आदमी जाकर टिकिट ले आया। आधा घण्टा बीतने पर घंटी बजी। एकान्त नीरवता को मुखरित करती हुई रेलगाड़ी धमधमाती हुई आ पहुँची। एक मजदूर ने बत्ती उठाकर हिलाई। एक खाली-से डिब्बे में हम झटपट जा बैठे। फिर घंटी बजी और एंजिन ने सीटी दी। गाड़ी हिली, थोड़ी आगे बढ़ने लगी कि किसी ने हमारे डिब्बे का दरवाजा खोला।

'मेरी बग़ल में बैठा हुआ आदमी एकदम उठकर खिड़की के पास आया और चिल्लाया :

' "जगह नहीं है। आगे जा।"

' "दरवाजा खोलनेवाले ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। वह भीतर घुसा। उसे धकेलकर नीचे गिराने का प्रयत्न ही व्यर्थ नहीं हुआ बल्कि गार्ड ने नीचे से डाँट बतलाई :

---

* ठौर-ठौर मदन का महाराज्य री,
गाओ-गाओ गीत मदनराज के सखी !

' "बैठने दो।"

'नवागन्तुक ने डिब्बे में प्रवेश करके दरवाजा बन्द कर दिया और मेरे सामने की खाली जगह पर आ बैठा।

' "यहाँ कहाँ बैठता है। ऊपर जा।" मेरे साथी ने उससे कहा।

' "क्यों?"

' "साथ में जनाना है। दीखता नहीं?"

' "तो तेरे जनाने को कौन उठा ले जायगा?"

'यह उत्तर सुनकर मुझे हँसी आ गई। मैं हँस दी। मेरा सारा शरीर शाल से ढक दिया गया था। मेरे चेहरे पर भी शाल का पर्दा लटक रहा था। फिर भी मेरा चेहरा दिख रहा होगा। मुझे हँसती हुई देखकर वह आदमी मेरी ओर देखने लगा।

' "क्यों झगड़ा करना है क्या? चल, हट यहाँ से।" दूसरे साथी ने उसे धमकाया और धमकी को कार्यान्वित करने के लिए आगे बढ़ा।

'आगन्तुक का चेहरा उग्र हो आया। मेरा साथी उस उग्रता को देखकर बढ़ते हुए रुक गया। थोड़ी ही देर में वह उग्रता शान्त हो गई।

' "वह कौन था?" मीनाक्षी ने पूछा। मानो उसने उस तरह के आदमी को कहीं देखा हो।

'मैं बतलाती हूँ। उग्रता शान्त होते ही उसने हँसते हुए कहा:

' "देखो भाई, यदि तुम्हें आपत्ति हो तो मैं दूसरे डिब्बे में जा बैठूँगा। फिर तो झगड़े का कोई कारण नहीं है न?

'मेरे साथियों को अब उससे झगड़ने का कोई कारण नहीं रह गया था, परन्तु मुझे बहुत ही दुःख हुआ। मैं बिलकुल नहीं जानती थी कि मुझपर अत्याचार करनेवाले ये अत्याचारी मुझे कहाँ लिये जा रहे हैं। मुझे इतना विश्वास था कि मेरे काका की इच्छानुसार मेरा विवाह करने के लिए वे मुझे भगाये लिये जा रहे थे। उस समय मेरा

रक्षक कोई भी नहीं था। उस नवागन्तुक की उपस्थिति मुझे अच्छी लगी, क्योंकि मैं जानती थी कि उस अनजान आदमी की उपस्थिति में वे लोग मुझे तंग नहीं करेंगे। फिर मुझे उसके चेहरे पर कुछ ऐसा सौजन्य दीखा कि मैं बार-बार उसका मुँह देखने लगी और उसकी उग्रता में मैंने अपना आश्रय देखा। लेकिन जब विनम्र होकर उसने दूसरे डिब्बे में जा बैठने की सिधाई दिखलाई तो मुझे इतना दुःख हो आया कि मानो मेरा मित्र मुझे छोड़कर चला जा रहा हो।'

मीनाक्षी ने निःश्वास छोड़ी। चमेली थोड़ी देर तक रुकी रहकर आगे बोली :

'मेरे मन की वेदना ऊपर फूट निकली होगी। वह मुझे ध्यानपूर्वक देखने लगा। मेरी आँखें उसकी ओर नहीं थीं फिर भी मैंने महसूस किया कि वह मुझे ग़ौर से देख रहा है।

'स्टेशन आते ही उसने उठने का प्रयत्न किया। उठते-उठते उसके हाथ में से एक छोटी-सी पोटली गिर पड़ी। उसके गिरते ही रुपए गिरने की-सी खनखनाहट की आवाज़ हुई। उसने धीरे से झुककर पोटली उठा ली और मेरे साथ' से कहा :

' "भाई, आराम से बैठिये। मैं दूसरे डिब्बे में चला जाता हूँ।"

'रुपए की खनखनाहट सुनकर मेरे साथी चौंक गये। उनमें से एक बोला :

' "हर्ज क्या है यहीं बैठो न! काफी जगह है। हमें तो सोना नहीं है। इस बाई को सोना हो तो जगह है ही।"

' "मुझे भी सोना है। रातभर का जागरण है और आँखें भी भारी हो रही हैं।'

' "कोई हर्ज नहीं। ऊपर चढ़ जाओ! आराम से नींद आयेगी।'

वह आदमी अन्यत्र नहीं गया। वह ऊपर के पटिये पर चढ़कर सो गया।

'मेरा मन शून्य हो गया था। क्षण-क्षण पर रोना आ जाता था। मेरी नींद तो उड़ ही गई थी। फिर भी सवेरा होते-होते मुझे नींद आ गई।

'मैं दो घण्टे सोई हूँगी कि इतने में मेरे एक साथी ने मुझे जगाया। हमें एक बड़े स्टेशन पर उतरना था। मैंने ऊपर सोये हुए आदमी की ओर दृष्टि डाली तो वह वहाँ नहीं दीखे। मैं और अधिक डर गई। मैंने पूछा :

' "अब मुझे और कहाँ तक ले जाओगे ?"

' "अभी तो एक दिन और एक रात का यात्रा शेष है। यदि कुछ भी गड़बड़ की तो याद रखना !"

'काका ने कुर्सी का पाँव जहाँ मारा था वहाँ अभी भी बहुत दर्द हो रहा था ! मेरे साथी का छुरा दिखलाना भी मुझे याद था। पहली गाड़ी बदलकर हम दूसरी में बैठे। अब मेरे साथी तीन की बजाय चार हो गये थे। एक बहुत ही डरावना परदेशी आदमी इस तरह आ बैठा था, मानो मेरे तीनों साथियों से परिचित हो।

'यह मेरी समझ में न आया कि मेरा विवाह करने के लिए मुझे इतनी दूर क्यों ले जा रहे हैं। मैंने दो चार प्रश्न पूछने चाहे। परन्तु कुछ भी उत्तर देने की बजाय वे मुझे धमकी ही देते जाते थे।

'अन्त में हम सिन्ध हैदराबाद स्टेशन पर उतरे वहाँ पुलिस के आदमियों को इधर-उधर घूमते देखकर मेरा मन उन तक दौड़ जाने को हो आया। किसी गुजराती सम्भ्रान्त व्यक्ति को देखकर अपनी मुसीबत सुनाने को ललचा उठी, परन्तु मेरे साथियों की निगाह मुझ पर से हटती ही नहीं थी। मैं बिलकुल ही भाग नहीं सकती थी।

'वे मुझे एक छोटे-से एकाकी घर में ले गये। रात को दो-तीन आदमी आकर मुझे देख गये। मैं बेची जाने को होऊँ इस तरह से वे आदमी मुझे घूर-घूरकर देखते थे। मेरा मन उनकी आँखें फोड़ डालने

को हो आया, परन्तु विवश थी।

'मैंने फिर रोकर अपने साथियों से प्रार्थना की :

' "मुझे बतलाओ तो सही कि मुझे यहाँ क्यों लाये हो! काका तो मेरे विवाह की बात कह रहे थे। मेरा विवाह कब होगा?"

' "बस दो-ही-चार दिन में हो जायगा।" एक आदमी ने बतलाया और बाक़ी सब के सब खिलखिला उठे।

'मैं सिर पर हाथ रखकर बैठ गई। मैं कुछ भी नहीं कर सकती थी। मैं उन राक्षसों की कैद में फँस गई थी। अपने भविष्य के बारे में सोचते हुए मुझे एक बहुत ही डरावनी कल्पना हो आई :

' "मुझे किसी वेश्यालय में तो नहीं बेच दें?"

'इस विचार के आते ही मेरे शरीर का रोम-रोम कम्पित हो उठा और अन्त में यही कल्पना सच भी हुई। एक दिन वे किसी सुसज्जित गृह में मुझे ले गये। उस मकान की स्वामिनी-सी लगती स्त्री ने मुझे पास बुलाया। फिर मेरा निरीक्षण किया। वह स्त्री खूबसूरत लगती थी परन्तु उसके सौन्दर्य में विलासिता की एक ऐसी छाया थी कि उसे देखते ही मेरा मन घृणा से भर आया। मैंने आँखें मूँद लीं, थोड़ी देर बाद जब आँखें खोलीं तो मेरे साथी अदृश्य हो चुके थे। उस स्त्री और मार्ग में मिले हुए उस भयंकर परदेशी के सिवा वहाँ और कोई न था।

'लगभग दस दिन तक मैं उस जगह एकान्त में बन्द रखी गई। मेरा मन लगाने के लिए तरह-तरह के प्रयत्न किये जाते थे। मुझे धमकाने के प्रयोग भी किये जाते थे। एक दिन तो उस परदेशी ने मुझे दो-तीन चाबुक ही जमा दिये। मैं उस यातना का वर्णन नहीं करूँगी। मुझे जिस तरह का जीवन व्यतीत करने की सलाह दी गई उससे मैंने स्पष्ट इनकार कर दिया। दो-तीन बार चाबुक की मार भी सही, परन्तु अब अधिक मार खाने की शक्ति शरीर में न थी। मैं

बतला नहीं सकती कि मैंने क्या किया होता ; या तो मैं जबान काटकर मर जाती या फिर पतिता बनकर नित्य अपने शरीर को बेचा करती।

'लगभग दस दिन बाद मैं दो परस्पर विरोधी विचारों में डूबने उतराने लगी। मरने में हानि ही क्या है? मेरा मन पूछ उठता और दूसरे ही क्षण यह विचार भी आता कि अब मेरा निस्तार कैसे होगा? मैं स्वीकार न करूँ तो आखिर क्या करूँगी? उसी दिन मेरे कमरे का दरवाज़ा खुला और गृह-स्वामिनी के साथ गाड़ी में मिलने और अदृश्य हो जानेवाले व्यक्ति मुझे दिखाई पड़े। मैं एकदम प्रसन्न हो गई।

' "वह किरीटकान्त ही थे न?" मीनाक्षी ने बीच में ही टोका।

' "हाँ, किरीटकान्त ही थे।' चमेली ने जवाब दिया।

दोनों ने एक दूसरे के सामने देखा। मीनाक्षी किरीट का ही ध्यान कर रही थी और चमेली भी उसी की बात कह रही थी।

'मैं क्यों प्रसन्न हो गई यह आज भी मेरी समझ में नहीं आता, परन्तु गृह-स्वामिनी मुझे आनन्दित देखकर खुश हो गई। वह हँसी और किरीटकान्त को वहीं खड़ा छोड़ कमरा बन्द करके बाहर चली गई।

'किरीटकान्त को अकेले पाकर पहले तो मैं थोड़ी-सी डर गई। प्रत्येक पुरुष में मुझे राक्षस दीखने लगा था। वह बिलकुल मेरे पास आ गये। मेरे पाँव अनायास ही पीछे हट गये, परन्तु किरीटकान्त ने धीरे से मुझसे कहा :

' "तुझे यहीं रहना है कि अपने घर जाना है?"

' "मुझे तो घर जाना है, परन्तु मुझे ले कौन जायेगा?'

' "मैं ले जाऊँगा। शर्त यही है कि तू मेरे पास से हटना मत। तेरा नाम क्या है?"

' "चमेली ।"

' "चमेली, बैठ जा, और मुझे बतला कि तू यहाँ कैसे आई ?"

'मैंने अपनी सब बात कह सुनाई। "मेरे काका ने अपने इच्छानुसार मेरा विवाह करने के लिए मार-पीटकर मुझे उन आदमियों के साथ भेज दिया था, परन्तु मैं यह नहीं समझ सकी कि ये लोग मुझे कहाँ ले आये हैं।"

' "तेरे काका को इन लोगों ने धोखा दिया और जिसके साथ तेरा विवाह होनेवाला था उसे भी धोखा दिया। उन लोगों को स्वप्न में भी यह खयाल नहीं आ सकता कि इस टोली ने तुझे यहाँ बेचा है।"

' "तो फिर मेरे काका को दस हजार रुपए नहीं मिले ?"

' " रुपये कहाँ मिलने को थे ? इससे तो यह जान पड़ता है कि तेरे काका इस टोली से ज्यादा भले नहीं हैं। रुपए लेकर लड़कियों का विवाह करने और वेश्यावृत्ति में विशेष अन्तर नहीं है। देख, अपना चेहरा प्रसन्न रखना। मैं तुझे गाड़ी में घूमने ले जाऊँगा।"

'इतना कहकर किरीटकान्त कमरे से बाहर निकले। थोड़ी ही देर में उन्होंने गृह-स्वामिनी के साथ पुनः प्रवेश किया। उसने मुझे अच्छे-अच्छे कपड़े पहिनाये और किरीटकान्त के साथ जाने को कहा। मैंने किरीटकान्त को उस स्त्री के हाथ में कुछ नोट देते हुए देखा।

'हम दोनो बाहर निकल आये और एक अच्छी-सी खुली गाड़ी में जा बैठे। सामने की बैठक पर मुझे चाबुक से पीटनेवाला भयंकर परदेशी बैठा हुआ था। गाड़ी शहर से बाहर निर्जनता की ओर जा रही थी। थोड़ी दूर जाने के बाद किरीटकान्त ने उस आदमी से कहा :

' "उस्ताद, आप गाड़ी में ही बैठ रहिये। मैं इनके साथ थोड़ा पैदल घूम आऊँ।'

'उस्ताद ने उपेक्षा से इस बात को अस्वीकृत कर दिया। मुझे

अकेली किसी के साथ जाने देना सम्भव न था।'

' "तो मेरे पैसे वापिस लाइये।"'

'उस्ताद क्रूरता-पूर्वक हँसा, परन्तु उसकी हँसी पूरी हो इसके पहिले ही किरीटकान्त ने जेब में से कुछ निकालकर उसके सिर पर प्रहार किया और उस चोट से लड़खड़ाते हुए उस्ताद को गला पकड़कर गाड़ी से नीचे फेंक दिया।

'मैं किसी को पीटा जाना बिलकुल सह नहीं सकती, परन्तु उस्ताद को यों मारकर फेंके जाने से मुझे बड़ी शान्ति मिली।

' "चलाओ! जोर से चलाओ!" किरीटकान्त ने गाड़ीवाले से कहा और गाड़ी बहुत जोर से आगे बढ़ी। थोड़ी देर तक उस्ताद पीछे दौड़ता हुआ दीख पड़ा, परन्तु इतने में हमारी गाड़ी ने पुलिस थाने में प्रवेश किया।

'वहाँ जाकर मैंने बयान दिये। मेरे घर तार किये गये। तार का जवाब आया और मैं पुलिस की रक्षा में किरीटकान्त के साथ वापिस भेजी गई।'

'अपना घर फिर से देखकर मैंने परमात्मा का आभार माना, परंतु ईश्वर को उस आभार की आवश्यकता नहीं थी। मेरे काका ने मुझे घर में ही नहीं घुसने दिया।

' "इस बिगड़ैल छोकरी की मेरे घर में जरूरत नहीं।"

' "तो मैं कहाँ जाऊँ?"

' "जहाँ से आई वहीं। अब मैं तुझे नहीं रख सकता।"

'काका ने मुझे मेरे माता-पिता से भी नहीं मिलने दिया। मैंने किरीटकान्त से कहा:

' "तो मुझे मेरे मामा के यहाँ ले चलो।"

'रेलगाड़ी द्वारा हम मामा के यहाँ रवाना हुए। मामा को भी मेरी आवश्यकता नहीं थी। उनकी समझ में यह नहीं आया कि जाने किसके

सहवास में रह आई, इधर-उधर भटकी हुई भ्रष्टाचारिणी लड़की को घर में रखकर जाति-बिरादरी में कैसे रहा जाय। और जब तक उनकी समझ में यह नहीं आ जाता, मैं कहीं भी जा सकती थी।

'सब मुझपर नाराज़ थे। मेरे कई आत्मीय सम्बन्धियों की इच्छा तो मुझे मार ही डालने की थी। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मैंने उन्हें नाराज़ करने जैसा क्या किया था। काका और मामा ने मेरा विवाह करने के लिए झगड़ा उठाया; मुझे तत्काल ब्याह देने के लिए काका द्वारा नौकर रखे हुए व्यक्ति मुझे उड़ा ले गये और अनजान जगह में बेच दिया। सभी ने इसके लिए मुझे अपराधी समझा। मैं शरीफ सम्बन्धियों के साथ रहने के योग्य नहीं समझी गई।

'किरीटकान्त ने मुझसे विवाह करनेवाले दोनों व्यक्तियों से पूछ-ताछ की। वे दोनों व्यक्ति जब चाहें तब लग्न के लिए कन्या प्राप्त कर सकने में समर्थ होने से मेरे गुम होने के एक सप्ताह बाद ही अपना-अपना विवाह कर चुके थे, इसलिए उन्हें भी अब मेरी आवश्यकता नहीं रही थी।

'किरीटकान्त ने मुझसे पूछा :

' "चमेली, अब क्या करेगी?"

' "मैं क्या कहूँ?" मैंने उन्हीं से पूछा और उत्तर मिलने से पहले ही मैं रो पड़ी। और कर ही क्या सकती थी बहिन?' बात करते-करते चमेली का स्वर काँप उठा। थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद उसने आगे कहना शुरू किया :

' "हम कहाँ जाएँगे?" मैंने थोड़ी देर चुप रहने के बाद किरीट-कान्त से पूछा।

' "मैं तो अपना ठिकाना ढूँढ़ लूँगा, परन्तु तेरा क्या होगा?"

' "मैं भी तुम्हारे साथ ही रहूँगी।"

किरीटकान्त दस मिनट तक कुछ न बोले। उनके चेहरे से अत्यधिक चिन्ता प्रकट हो रही थी। मैं उनके चेहरे की ओर हताशा से देख रही थी कि इतने ही में उन्होंने कहा :

' "चमेली मेरे ही साथ चल।"



१४

चोरनी संगे तुं शीखी चोरवा
हो वाँसलडी !
वहालो माखण चोर्युं ने तें तो मन रे
हो वाँसलडी ! *

—दयाराम

'तब से मैं किरीटकान्त के पास ही रहती हूँ। मुझे अन्यत्र कहीं जाना भी नहीं है। बस, मेरा और किरीटकान्त का यही सम्बन्ध है।'

चमेली अपने बारे में इतना कहकर चुप हो रही। मीनाक्षी को लगा कि उसकी आँख के आगे ही यह सादी पर हृदय वेधक घटना घटी हो। दूसरों की इच्छानुसार किये जानेवाले विवाहों का कैसा परिणाम होता होगा? और उसमें भी कन्या-विक्रय करनेवाले संरक्षकों द्वारा किये जानेवाले भयंकर पापों का हिला देनेवाला अनुभव मीनाक्षी ने किया। चमेली या तो नापसन्द पति से विवाह करती या वेश्या-वृत्ति कर जीवन बिताती होती। फिर उसे एक भय-प्रेरक खयाल आया कि इस

---

* चोर के संग तू सीखी चुराना
ओ बाँसरी !
बालम ने माखन चोरा, तू ने तो मन
री बाँसरी !

परिस्थिति में किरीट के साथ किस तरह का सम्बन्ध हो सकता है, पाँच वर्ष तक युवा स्त्री-पुरुष एक दूसरे के सतत सान्निध्य में हों तो उसका क्या परिणाम हो सकता है ?

मुँह खोलकर कहा नहीं जा सके ऐसा सत्य उसके हृदय-पटल पर अंकित हो गया : कन्या-विक्रय अर्थात् वेश्याओं और रखेलियों का अड्डा ; नहीं ? और उसे संभव बनानेवाला कौन ? संरक्षक और माता-पिता ! दूसरा कौन ?

चमेली और किरीट दोनो में से किसी को भी उसका मन पापी न मान सका। क्यों ? चमेली की निर्दोषिता और किरीट की ओर उसका अपना...क्या ?...पक्षपात ! हमारे प्रिय व्यक्ति यदि पाप रहित हों तो कितना अच्छा !

मीनाक्षी ने एक असंभव प्रश्न पूछा :

'तो तू किरीटकान्त के साथ विवाह क्यों नहीं कर लेती ?'

चमेली की आँखों में लज्जा घनीभूत हो आई और चेहरे पर मुसकराहट आ फूटी। उसने मीनाक्षी की ओर की हुई नजर फिरा ली और कहा :

'यह क्या मेरे हाथ में है ?'

'तो फिर किसके हाथ में है ?'

चमेली हँस पड़ी। बार-बार किरीट के नाम का उच्चारण करनेवाली चमेली से इस बार यह नाम नहीं लिया गया। उत्तर में उसने प्रश्न पूछा :

'यह तुम्हीं बतलाओ न ?'

'किरीटकान्त मना करते हैं ?'

'उनसे पूछे कौन ?'

'तू ही। दूसरा कौन ? साथ-साथ तो रहती है और इतना ही तै नहीं कर सकती ?'

'ना बहिन! मेरी जबान नहीं खुलती। और मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि किरीटकान्त किसी के साथ विवाह नहीं करेंगे।'

'क्यों?' मीनाक्षी ने उतावली से पूछा।

'क्योंकि वह किसी अन्य से प्रेम करते हैं।'

'तू यह कैसे कहती है?'

'वाह! पास रहती हूँ और इतना भी नहीं जानूँगी?'

'किसी का नाम लेते हैं?'

'नहीं। ऐसे भी कोई कहता है? अपने हृदय में ही नाम रखता हो तब?'

'तू झूठी है। तुझे व्यर्थ ही वहम हो गया है।' मीनाक्षी ने कहा। मीनाक्षी जानती थी कि एक समय किरीट ने उसके आगे अपना प्रेम व्यक्त किया था। हमें कोई चाहता है यह जानने—और जानकर बारम्बार दूसरों से कहलवाने का स्त्रियों का मन क्यों होता है?

'मैं सच कहती हूँ। कहीं ऐसा भी हो सकता है कि उनकी लम्बी साँसें मेरी समझ में न आएँ?'

'तो फिर तू उनके प्रेम में अनुकूलता पैदा क्यों नहीं कर देती?'

'मैं क्या कर सकती हूँ? मैं कहाँ किसी के बीच में पड़ूँ?'

'तुझे ऐसा लगता होगा, परन्तु तू उनके साथ रहती है इसलिए किरीटकान्त को अनुकूलता का अभाव तो होता ही होगा?' प्रेम की असहिष्णुता इतनी अति तीक्ष्ण होती है कि वह बिना किसी प्रयोजन के ही काट डालना चाहती है। किरीट से प्यार करनेवाली चमेली को किरीट प्यार नहीं करता यह जानने के लिए अनिच्छा से मीनाक्षी ने कहा।

'बहिन, मैं चाहे जैसी हूँ; परन्तु किरीटकान्त तो एक ऋषि हैं। दुनिया चाहे जो समझे; परन्तु हम दोनों एक निष्पाप जीवन बिताते हैं। मुझसे ऐसा नहीं हो सकता था। किरीटकान्त की जगह यदि कोई

दूसरा पुरुष रहा होता तो भी नहीं हो सकता था और यदि किरीटकान्त को उनके प्रेम में किसी ने निराश नहीं किया होता तो भी नहीं हो सकता था। मुझे तो विश्वास हो गया है कि किरीटकान्त का हृदय किसी की क्रूरता से घायल हो गया है।'

मीनाक्षी इस बात को सह न सकी। ऐसा मालूम पड़ता था कि उसके हृदय में भी काँटा चुभ रहा है। उसने बात बदल डाली। कुछ खाने-पीने को मँगवाया। उस समय कहीं चमेली को याद आया कि मधुकर बेचारा कभी का बाहर बैठा हुआ है।

'मैंने तो बहुत देर लगाई। मधुकर बेचारे अकेले ही बाहर बैठे हैं।'

'कहाँ?'

'आपके बाहर के कमरे में।'

'उन्हें यहाँ बुलाया जाय।' कहकर मीनाक्षी ने उसे बुलाने के लिए एक नौकर भेजा।

मधुकर भीतर आया। मीनाक्षी ने कहा :

'मैंने तुम्हें देखा है, देखा है न?'

'जी हाँ। मैं सँदेशा लाया था।'

उस सँदेशा की मीनाक्षी को याद थी। किरीटकान्त के मिलने न आ सकने का अप्रिय सँदेश लानेवाले मधुकर को वह भुला न सकी थी। सबने मिलकर कुछ नाश्ता किया, परन्तु उसमें किसी का मन नहीं लगा। चमेली और मीनाक्षी मानो परस्पर एक दूसरे पर पहरा दे रही थीं। मधुकर तो इन दोनो सुन्दरियों को देखता ही रह गया। सौन्दर्य का प्रारम्भिक ज्ञान बहुत ही उलझने पैदा करता है।

'चमेली और मीनाक्षी दोनो में से कौन अधिक सुन्दर है?' उसके मन में प्रश्न उठा। सौन्दर्य तोला नहीं जाय, नापा नहीं जाय तब तक इस प्रश्न का उत्तर कैसे मिल सकता है!

'अब चलूँ ?' चमेली ने पूछा।

'तेरा बहुत वक्त लिया। तू पास रहती है तो मुझे बड़ा भला लगता है।' मीनाक्षी ने कहा। किरीट के सामीप्य में रहनेवाली चमेली पर उसे कभी-कभी ईर्ष्या होती थी, फिर भी वह उसे सचमुच ही चाहने लगी थी। दयाराम की वंशी—गोपिका को सुहाती और अनसुहाती वंशी—उसे याद हो आई :

'मानीती तू है मोहन की ओ बाँसुरी !
तुझे बालम करता है अति प्यार ओ बाँसुरी !'*

कई हृदय एक ही साथ ईर्ष्या और प्रेम के परस्पर विरोधी भावों को हृदय में पोषित करने का अति दुस्तर कार्य कर सकते हैं।

'मुझे भी तुम्हारे पास आना बहुत अच्छा लगता है।' चमेली ने कहा। अपने हृदय को हलका कर सकने योग्य एक भी स्थान आज तक चमेली को नहीं मिला था। मीनाक्षी ने यह भूख मिटाकर चमेली को अपनी आत्म-कथा सुनाने के लिए प्रेरित किया था।

मीनाक्षी साथ-साथ उसे बिदा करने गई। मधुकर आगे चल रहा था। उसकी ओर इंगित कर मीनाक्षी ने पूछा :

'यह मधुकर कौन है ?'

'पत्र निकालने में किरीटकान्त के सहायक हैं।'

'लड़का बड़ा भला है, क्यों है न ?'

'हाँ।' चमेली ने जवाब दिया। चमेली के उच्चारण या उसकी दृष्टि में मीनाक्षी ने कुछ देखने की आशा रखी हो तो उसे निराश होना पड़ा। मधुकर के उल्लेख से चमेली में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ।

'किरीटकान्त कब आएँगे ?' अन्त में सीढ़ियाँ उतरते हुए मीनाक्षी ने पूछा।

---

* मानती तुं छे मोहन तणी हो वासलडी !
तने बालम करे छे घणुं वहाल रे ! हो वांसलडी.

'बहुत पहिले आ जाना चाहिये था, परन्तु अभी तक नहीं आये।'

'आ जाएँ तो अवश्य कहना कि मैं उनको याद करती थी।'

'अच्छा।'

'और यह भी कहना कि फ़ुर्सत हो तो मुझसे मिल जायँ।'

'अवश्य कहूँगी।' चमेली ने कहा। और वह सोचने लगी कि कहीं वह लुटेरिन के घर में से लुटकर तो नहीं जा रही है?

२५

सूनो हिंडोळो मारा स्नेहनो ने काँई
सूनो आ देहनो हिंडोळ रे
स्नेहधाम सूनां सूनां रे !

व्हालानी वागे दूर वांसळी,
नाथ आवो बोलो एक बोल रे !
स्नेहधाम सूनां सूनां रे ! *

—न्हानालाल

मीनाक्षी की उपस्थिति में उसके प्रति चमेली के मन में जो कोमल भाव पैदा हुए थे वे उसका चेहरा हटते ही दूर हो गये। मीनाक्षी को सब कुछ सुनाने में उसने गलती तो नहीं की! मीनाक्षी किसलिए इस या उस बहाने से किरीट को याद करती थी! किरीट और मीनाक्षी के बीच कभी प्रेम तो नहीं रहा हो? यह भी तो हो सकता है कि उसकी अपनी परवशता ही की तरह किरीट और मीनाक्षी को भी विलग होना

* सूना हिंडोल मेरे स्नेह का और कुछ
सूना इस देह का हिंडोल रे!
स्नेहधाम सूना सूना रे!
साजन की बाजे दूर बांसुरी
नाथ आओ बोलो एक बोल रे!
स्नेहधाम सूना सूना रे!

पड़ा हो। किरीटकान्त के एकाकीपन का रहस्य इसी में तो न छिपा हो !

उस पुराने भाव के जाग्रत होते ही दोनो मिलकर कहीं चमेली को ही धक्का देकर तो बाहर न कर दें ! तो वह कहाँ जाय ! किसका हृदय टटोले ? किरीट को अपना मन अर्पित किये हुए जीवन पर चमेली का अधिकार ही कहाँ रहा था ! परंतु उस अर्पण को किरीट ने कहाँ स्वीकार किया था ! उस अर्पण की किरीट को खबर ही कहाँ थी ! किरीट उसे धकेल दे तो !

किरीट का आश्रय भले ही छूटे, पर उसकी छाया मैं नहीं छोड़ूँगी।' चमेली ने निश्चय किया।

घर लौटते समय उसने मधुकर के साथ भी बात नहीं की। घर के आगे मोटर खड़ी हुई तभी उसे मालूम पड़ा कि वह मोटर में बैठकर लौटी है। मोटर में से उतरते समय उसने देखा कि उसके घर का किवाड़ खुला हुआ है।

'मैंने कहा था न, मैंने रास्ते में किरीटकान्त को ही देखा था !' चमेली ने मधुकर से कहा।

'कैसे कहती हो !'

'उनके सिवा घर को और कौन खोल सकता है !'

वापिस लौटते हुए चमेली मधुकर से पहली बार ही बोली थी। मधुकर को चमेली का बोलना जितना प्रिय था मौन भी उतना ही प्रिय था। चमेली की अभी तक की चुप्पी से उसे बुरा बिलकुल नहीं लगा था। प्रेम की प्राथमिक भूमिका में कलापी द्वारा वर्णन की गई स्थिति प्रेमी के हृदय में उत्पन्न होती है :

कर तुं कंई अे कर तुं कंई अे
मधु तेथी बने बधु शुंकदी अे *

* कर तू कुछ भी कर तू कुछ भी
माधुर्य उससे अधिक क्या होता है ?

मधुकर को पता ही न लगा कि चमेली के पाँव इतनी चपलता से किरीट को देखने के लिए उठ रहे हैं।

'कितने दिन !' किरीट को देखकर चमेली के मुँह से निकल पड़ा।

किरीट ने चमेली और उसके पीछे चले आते मधुकर को देखा और हँसकर पूछा :

'तुझे कुछ असुविधा तो नहीं हुई ?'

'असुविधा क्यों होती ? मधुकर बेचारे अकसर आते रहते थे। परन्तु मुझे चिंता कितनी होती थी ?'

चमेली के मुँह से अपने नाम का उच्चारण सुनकर 'बेचारे मधुकर' का हृदय अत्यन्त प्रसन्न हो गया।

'तेरे लिए मैं कितना अच्छा साथी छोड़ गया था ? मुझसे भी अधिक सुंदर...'

'अच्छा-अच्छा, बात क्यों बदलते हो ? तीन दिन का वादा कर सात-सात दिन लगा दिये, क्यों ?' किरीट को बीच ही में रोककर चमेली ने कहा।

मधुकर के चेहरे पर लाली छा गई, परंतु चमेली के चेहरे पर भी इसी तरह का परिवर्तन देखने की किरीट की आशा सफल न हुई। उसने सोचा था कि सात दिन का सहवास चमेली और मधुकर जैसे युवाओं को प्रेमी बनाने के लिए बहुत होगा। यह उसकी भूल थी। प्रेमी बनने के लिए एकान्त की आवश्यकता नहीं होती। लाखों मनुष्यों के समूह में दो हृदय प्रेम से प्रज्वलित हो उठते हैं और सात-सात दिनों की आवश्यकता ही क्या ? सात क्षणों में ही हृदय की कलियाँ गुम्फित हो जाती हैं। हृदयों का मिलाप न होना हो तो सात-सात युगों का सतत सहवास भी प्रेम उत्पन्न नहीं कर सकता।

किरीट विभ्रम में पड़ गया। चमेली की विचित्रता उसे बहुत ही

आश्चर्यजनक मालूम पड़ी। पाँच-छः वर्षों से अपने सम्पर्क में रहनेवाली युवती की आँखों में उसने कभी वासना नहीं देखी थी। यह आश्चर्य नहीं तो क्या है? किरीट को मधुकर बहुत अच्छा लगता था। उसका दिखावा और स्वभाव ऐसा था कि किसी भी युवती को पसन्द आ जाता। किरीट को विश्वास था कि इन दोनों के सहवास से चमेली के हृदय में मधुकर के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जायगा, इसीलिए उसने इन दोनों के लिए ऐसा प्रसंग भी उपस्थित कर दिया। फिर भी चमेली में तो उसे वही निर्दोष ममता दिखलाई पड़ती थी! अब क्या हो? चमेली को वह कैसे दूर कर सकेगा?

चमेली को जरा भर दुःख न हो ऐसे अच्छे-से-अच्छे ढंग द्वारा किरीट उसे अपने से दूर करने का प्रयत्न कर रहा था। चमेली उसके जीवन का एक अंग हो गई थी, परन्तु किसी निश्चित ध्येय को जीवन समर्पित कर देनेवाले कर्मवीर को अपने जीवन में अनेकों बलिदान देने पड़ते हैं। पिछले पाँच वर्षों से चमेली किरीट के जीवन में अनिवार्य हो पड़ी थी। फिर भी उसे विलग किये बिना किरीट का छुटकारा न था। यदि वह चमेली को दूर न कर दे तो उसके कार्य में विघ्न तो उपस्थित होंगे ही, साथ ही चमेली का जीवन भी निरर्थक हो जायगा। किसलिए अकारण ही इस निर्दोष युवती का जीवन दुःखी बनाया जाय?

चमेली पर किरीट का बहुत ही स्नेह था। उसने न केवल भयंकर जीवन में से इस निर्दोष, निरपराधी बालिका को उबारा था; परन्तु जब सारे संसार में इस युवती का कोई अपना न रहा तो अनेकों जोखमें सहकर भी उसे आश्रय दिया था। चमेली ने भी उस उपकार का पूरा-पूरा बदला चुकाया। किरीट की परिचर्या में उसने कभी कोई त्रुटि नहीं आने दी। वह किरीट का घर सम्भालती; किरीट को खिलाती-पिलाती; किरीट को सुखी रखने के लिए अपनी देह तोड़ती;

किरीट की सार-सँभाल की चिन्ता में रतजगे करती। किरीट यह सब देखता था। वह जानता था कि कृतज्ञता की भावना इस युवती से इतना सब कुछ करवाती है। उसे यह भी मालूम था कि चमेली ही की वजह से वह कई शारीरिक झंझटों से मुक्त है, परन्तु चमेली को अपने घर रहने देकर चमेली का स्वार्थ न देखने में उसे अपने ही स्वार्थ की पराकाष्ठा लगती थी, इसीलिए चमेली का किसी सुपात्र युवक के साथ विवाह कर उसे सुखी देखने की उसमें उत्कट अभिलाषा जाग्रत हुई थी; परन्तु आश्चर्य यह था कि चमेली किरीट से जुदा होना नहीं चाहती थी। किसलिए?

किरीट चमेली को एक नन्हें मित्र की तरह समझता था। उसके मन में चमेली के प्रति एक क्षण के लिए भी मित्रता के सिवा और कोई भावना न आई थी। किरीट ने कभी ऐसी कल्पना तक नहीं की थी कि चमेली में उसके प्रति कृतज्ञता के सिवा और कोई भावना भी हो सकती है। उसका प्रेम-जगत जल-भुनकर खाक हो गया था। अब कोई उसे प्यार कर सकता है ऐसा उसने सपने में भी नहीं सोचा था। पर्वत को इसका भान ही नहीं हो पाता कि उसके वज्र शिखरों पर सदा द्रवित होनेवाली बर्फ जमा हो गई है। अग्नि-स्फुलिंग उड़ानेवाले ज्वालामुखी को मालूम न था कि अग्नि-वर्षा में भी उसके किसी कोने में हरियाली फूट निकलने का प्रयत्न कर रही है। किरीट को कभी ऐसा खयाल ही नहीं आया कि चमेली उसे चाहती है। न चमेली ने कभी उसमें ऐसा खयाल पैदा करने का प्रयत्न ही किया। वह प्रेमिका थी। प्रेम की तीव्रता में विलासिता की भूख मर जाती है। शब्द या हावभाव से उसने कभी किरीट को यह भान नहीं होने दिया कि उसके हृदय में किरीट के प्रति मित्रता या कृतज्ञता के सिवा स्त्री पुरुष सम्बन्धी आकर्षण की भावना भी है।

और इतना सब होते हुए भी चमेली किरीट को इतना प्यार करती

थी कि घड़ी भर का वियोग भी उससे सहन नहीं किया जा सकता था। धरती अपने हृदय में आग छिपाये रखती है न?

किरीट ने मधुकर के साथ कुछ देर तक पत्र-सम्बन्धी बातचीत की। मधुकर अपने घर गया। किरीट ने आज चमेली के मन को पूरी तरह से समझने का निश्चय किया, परन्तु इसका कोई निश्चित नियम नहीं है कि किसी के हृदय को समझने के लिए प्रारम्भ कैसे किया जाय। निकटता जितनी ही अधिक हो, कठिनाई भी उतनी ही अधिक होती है।

साँझ को घर रहता तो किरीट कुछ न-कुछ पढ़ता था। चमेली ने झूले के पास एक कुर्सी रखी। उस पर कन्दील रखा। किरीट बोला।

'चमेली!'

'क्या?' चौंककर चमेली ने जवाब दिया। आज उसे किरीट के चेहरे और बोलचाल में स्पष्ट परिवर्तन दिखाई दे रहा था।

'चौंकती क्यों है?'

'बड़ी देर से तुम चुप थे और अभी एकदम बोल उठे इसलिए मैं चौंक गई।'

'बड़ी विचित्र लड़की है।' किरीट को चमेली अभी तक लड़की जैसी ही लगती थी। 'देख, यह तेरी पुस्तक है।'

'मेरी पुस्तक?' चमेली की समझ में कुछ न आया। किरीट कई बार समझ में न आ सकने जैसी बात कहता तो चमेली हँस देती। इस बार भी उसने हँसकर ही पूछा।

'हाँ, तेरी पुस्तक।'

चमेली ने उसे हाथ में लिया। पुस्तक में कुछ छपे हुए शीर्षक-वाले कोष्ठक और उनमें स्याही से लिखे हुए आँकड़े थे।

'इसका मैं क्या करूँ?' चमेली ने पूछा।

'पहले यह तो समझ ले कि यह कैसी पुस्तक है!'

'समझाओ ।'

'तेरे नाम की बैंक की किताब है ।'

समझदार होने के बाद से चमेली को कभी-बैंक के साथ व्यवहार करने का काम न पड़ा था । अधिक जानकारी के लिए उसने पूछा :

'फिर ?'

'फिर क्या ? इसमें तेरे पाँच हजार रुपए हैं ।'

'मेरे ! मेरे पास तो कुछ भी नहीं है ।'

'तुझे क्या पता ? वे तो तेरे ही रुपए हैं ।'

'किसने दिये ?'

'सब कुछ जानना चाहती है ?'

'उसके सिवा मैं पैसे ले ही कैसे सकती हूँ ?'

'मान ले कि किसी ने तुझे भेंट दी है ।'

'कैसे मान लूँ ? पाँच हजार रुपए मुझे भेंट दे ऐसा मेरा कौन है ? हाँ, यदि किसी उतावले को मुझसे विवाह करना हो तो भले ही दे, परन्तु यदि ऐसा है तब तो मेरी कीमत आधी ही रह गई !' चमेली ने हँसते-हँसते अपने काका द्वारा किये जानेवाले विक्रय का प्रसंगोल्लेख किया ।

'बिना विवाह किये ही यदि कोई भेंट देनेवाला निकल आये तो ?'

'यह जाने बिना कि वह कौन है मैं भेंट लूँगी ही नहीं ।'

'यदि मैं तुझे यह विश्वास दिलाऊँ कि इसमें हानि कुछ भी नहीं है तब ?'

'तो भी नहीं ।'

'समझ ले कि मैं ही तुझे भेंट दे रहा हूँ ।' किरीट ने ज़रा रुकते-रुकते कहा ।

'जाओ जाओ, मैं ऐसा नहीं समझूँ तो ?'

'मैं विश्वास-पूर्वक कहता हूँ कि यह तुझे मेरी भेंट है।'

यह सुनकर चमेली की आँखें इस तरह विस्फारित हो गईं मानो उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ हो।

'तो क्या मैं तुम्हारे पास ऐसी भेंट लेने के लिए रही हूँ?' चमेली ने दुःखित होकर पूछा। हृदय चाहनेवाला कभी धन से भी रीझा है?

'तू मांगे और मैं दूँ तो बात जुदी है। यह तो मैं बिना माँगे ही अपनी मर्जी से दे रहा हूँ।'

'तुम्हारे पास इतनी रकम आई कहाँ से? तुम तो सम्भालि रखते नहीं। और फिर यह भी कहते हो कि पैसा बटोरनेवाला पापी है।'

'यह बात सच है। फिर भी मैंने तेरे लिए इतना पाप किया है। अब और कुछ?'

'ऐसा पाप-पूर्ण पैसा लेकर मैं क्या करूँ? मुझे नहीं चाहिये।'

'पैसों को पाप तो मैं मानता हूँ। दुनिया की मान्यता भिन्न है।'

'मुझे दुनिया से क्या मतलब?'

'तेरा काम बिना दुनिया के नहीं चल सकता। मेरी बात जुदी है।'

'तुम्हारा चल सकता है और मेरा क्यों नहीं चल सकता।'

'मैं तो अकेला हूँ और...'

'अकेले कहाँ हो? मैं तुम्हारे साथ जो हूँ।' चमेली ने किरीट को अपनी बात पूरी न करने दी।

किरीट चिढ़ गया :

'तुझमें तो कुछ भी अक्ल नहीं है। आ यहाँ मेरे पास बैठ। मैं तुझे समझाता हूँ।'

चमेली जीवन में पहली बार पुरुष के साथ एक ही हिंडोले पर बैठी। पहली बार वह संकुचित हुई, परन्तु किरीट तो इस तरह निस्संकोच तकिये के सहारे बैठ रहा मानो किसी छोटे मित्र को अपने पास

बैठाया हो। उसे यह खयाल ही न आया कि चमेली का पाँव उससे छू गया और चमेली ने छूते ही उसे हटा लिया। चमेली के हृदय में इन्द्रधनुष जैसी नाना रंग-बिरंगी भावनाएँ उठ रही थीं; परन्तु उसके चेहरे पर तो वही नासमझी और निर्दोषिता झलक रही थी।

'बतला, तू मेरे साथ कब तक रह सकेगी?'

'जीवन-पर्यन्त।'

'इन पाँच वर्षों में तू कभी ऊबी नहीं?'

'नहीं।'

'तो अब ऊब जायगी। तुझे मालूम है कि तेरी उम्र क्या हुई?'

'बाईस पूरे हुए कहो या तेईसवाँ चल रहा है कहो।'

'तो फिर तुझे ठिकाने से लगना चाहिये न?'

'मैं ठीक ठिकाने से तो हूँ।'

'ऐसे नहीं। तुझे विवाह करना चाहिये। तेरी जैसी स्थिति में अकेले रहना कठिन है। मैं तुझे यह जो थोड़ी-सी भेंट देता हूँ उसे स्वीकार कर और विवाह करके सुखी बन।'

'तुमने विवाह किया है?'

'मैंने विवाह किया होता तो तुझे पता न चलता?'

'तो मुझको विवाह करने को क्यों कहते हो?'

'मेरी और तेरी बात में अन्तर है। मैं दुःख भुगतने के लिए जन्मा हूँ। सुख से मेरा वैर है।'

'जो सुख तेरा वैरी है मुझे उसकी आवश्यकता नहीं। मैं भी सुख के साथ दुश्मनी करूँगी।'

'ओ पगली! मेरा कहना मान। तुझे मैं क्या कहूँ? तेरा अब अधिक समय तक मेरे साथ रहना सुरक्षित नहीं है।'

'क्यों? इस घर में भूत प्रेत आएँगे?

'मैं खुद ही भूत-प्रेत हो जाऊँगा। कल से यह घर छोड़कर मुझे वनवासी हो जाना पड़े तो ?'

'तुम्हें अकेले वन में जाने दिया जा सकता है ? मेरे बिना तुम्हारा भोजन कौन बनायेगा ?'

'कभी मुझे जेल ही जाना पड़ गया !'

'मैं भी साथ जाऊँगी। मुझे क्यों इस तरह दूर धकेलने का प्रयत्न करते हो ? मैं कभी भी तुम्हारे काम के बीच में आई हूँ ?'

सच, इतने वर्ष हुए पर चमेली ने रंच-मात्र भी पूछताछ न की थी कि किरीट कौन है और क्या करता है। किरीट उसे जैसा दीखता वैसा ही उसने उसे स्वीकार कर लिया था।

'चमेली तू नहीं समझती। यह किरीट तो समाज और राज्य का भयंकर अपराधी है। संभव है कि कल से इसे विकराल राक्षस बन जाना पड़े, यह कितनों ही को क़त्ल कर डाले और अन्त में स्वयं भी फाँसी पर झूलकर मर जाय। बतला, इस राक्षस के साथ तू रह सकेगी ?'

किरीट की आँखें चमकने लगीं। उसके चेहरे पर से, सदा छाया रहनेवाला विषाद उड़ गया और उसके स्थान पर किसी हिंसक पशु की क्रूरता आ गई। यह परिवर्तन देखकर चमेली व्यथित हो गई। एक क्षण भर को उसने आँखों पर हाथ रख लिया और बोली :

'भाई साहब, ऐसे नहीं ! मुझे यों झूठ-मूठ मत डराओ। तुम ऐसे हो ही नहीं।

किरीट को चमेली की यह चेष्टा देखकर हँसी आ गई। उसके चेहरे पर छाई हुई क्रूरता ग़ायब हो गई। चमेली ने आँखों पर से हाथ हटाकर कहा :

'देखो मैं क्या कहती थी ! अब कैसे सुन्दर दीखते हो ! राक्षस ऐसे होते होंगे ? झूठे कहीं के !'

'ठीक ! तू मेरे ही साथ रहना, लेकिन विवाह करने में तुझे आपत्ति क्या है ?'

'परन्तु किसके साथ ?'

'तेरी राजी हो उसके साथ। चाहे जैसा भी हो ऐसे किसी आदमी के साथ मैं तुझे नहीं ब्याहूँगा। मधुकर को मैं अपने पत्र का अधिपति बनानेवाला हूँ। एक है पीयूष—हाल ही विज्ञान का प्रोफेसर नियुक्त हुआ है और भी दो-एक आदमी बतलाऊँगा।

'यानी मेरा स्वयम्बर रचोगे, क्यों ?'

'हाँ ! संसार में प्रत्येक विवाह स्वयंवर विधि से ही होना चाहिये।'

'स्वयंवर के वक्त तुम भी रहोगे न ?'

'अवश्य ! तेरा विवाह हो और मैं उपस्थित न रहूँ ! मैं कहीं भी क्यों न रहूँ उस समय आ पहूँचूँगा।' चमेली के पूछने का अर्थ कुछ और था और किरीट की समझ में कुछ और ही आया। चमेली ने इसलिए पूछा था कि किरीट भी स्वयंवर में रहेगा तो वह उसी को वरमाला पहिना देगी। किरीट ने यह समझा कि चमेली में, ऐसी इच्छा होना स्वाभाविक ही है कि उसके विवाह के आनन्द में उसका पालक और रक्षक अवश्य भाग ले।

'मैं एक शर्त पर विवाह करूँगी।' चमेली ने ज़रा मचल कर कहा।

'तेरी शर्तों का तो कुछ पार ही नहीं ! बतला कौन-सी शर्त है !'

'यदि तुम भी अपना विवाह करो तो !'

१६

दीधुं दिक्षिण ते पीधुं, लीधुं रूप अवधूत घोर !
तोडी जगतना तोर !
भय भूली जगजीभ हो भाखे हवे भूंडुं !
हुं एकलो ऊडुं ! *

—न्हानालाल

किरीट चमेली की शर्त सुनकर चौंक पड़ा। उसने एक बार, आज से दस-बारह वर्ष पूर्व अपनी विवाहेच्छा के बारे में अनेकों कल्पनाएँ की थीं, परन्तु उसकी वह इच्छा पूरी न हुई। और उसके बाद फिर से उसे अपने विवाह की कल्पना अच्छी न लगी। वह जिस कार्य में मशगूल था उसमें विवाह जैसे सुखमय प्रसंग की कल्पना तक के लिए अवकाश न था। वह संसार का दुश्मन हो गया था। मनुष्य-जाति के प्रति उसमें तीव्र वैरवृत्ति पैदा हो गई थी। मृदुल भावनाएँ उसके हृदय की सतह पर से नष्ट हो गई थीं।

ऐसे आनन्द-द्रोही हृदय की एक भूली हुई मधुर रागिनी को फिर से छेड़नेवाली युवती उसके भूत काल की होली को धधका रही थी।

---

* लिया रूप अवधूत घोर, दिया त्रिविध ने पद पिया!
जग का बन्धन तोड़ दिया!
भय भूल भले ही जग कहे बुरा-भला!
मैं तो उड़ चला अकेला!

किरीट के हृदय में एक मीठी पर साथ ही असह्य वेदना जाग उठी। उस वेदना को दबा देने के लिए उसने विषाद और निराशा का आश्रय लिया।

'अरी मूर्ख, तू यह क्या पागलपन की बातें बकती है? मैं क्या अब विवाह कर सकता हूँ?'

'क्यों नहीं कर सकते? हर्ज ही क्या है?'

'मेरी तो उम्र ही बीत गई।'

'तुम सत्तर-पचहत्तर साल के तो होगे?' बहुत ही गम्भीरता से चमेली ने पूछा।

किरीट हँसकर बोला :

'सत्तर नहीं तो उसका आधा तो हूँगा ही।'

'तो फिर?'

'तो यह कि अब मुझसे विवाह कौन करेगा?'

'और मान लो कि कोई विवाह करने पर तैयार हो जाय तो?'

'तो मुझे मना करना पड़ेगा।'

'क्यों?'

'सिर पर आती 'चालिसी' का भी मुझे खयाल करना चाहिये न?'

'अवश्य!'

'इतना ही नहीं, परन्तु मुझसे विवाह करने को तैयार यदि कोई मूर्ख निकल आये तो उसे भी इसका खयाल करवाना चाहिये।'

'क्या उसे इतनी भी समझ न होगी?'

'समझ हो तो वह कभी तैयार ही न हो। 'चालिसी' लगते ही बाल सफेद हो जाते हैं, आँखों में अन्धेरी आने लगती है, शरीर की स्फूर्ति कम हो जाती है, देह स्थूल हो जाती है...'

'जिनके पति चालीस वर्ष के हो जाते होंगे वे सब स्त्रियाँ तलाक देती होंगी, क्यों?' चमेली ने पूछा।

किरीट फिर हँसा। चमेली की वक्रोक्ति कई बार उसे हँसाती थी। उसने कहा :

'अब तू मेरी बात छोड़ और अपनी बात कह।'

'मैंने तो कह ही दिया न! तुम विवाह करो तो मैं करूँ!'

'यदि मुझसे विवाह करनेवाली कोई मिले ही नहीं तब?'

'तो तुम इस शर्त से मुक्त हो जाओगे?'

'बिलकुल ठीक, अब कहीं तुझमें अक्ल आई।'

'पर देखना हाँ! अन्यथा शर्त माननी पड़ेगी।'

'हाँ, भाई, हाँ! पर तू मेरा खयाल छोड़!'

किरीट को अपने बारे में विश्वास था। चमेली अपने पालनकर्ता को सुखी देखना चाहती थी; किरीट ने इस सब बातचीत का यही मर्म समझा कि चमेली की इच्छा अपना विवाह कर सुखी होने के साथ ही यह भी है कि किरीट भी विवाह करके सुखी हो। यह समझकर किरीट कुछ आनन्दित भी हुआ कि चमेली उसकी बात आगे करके एक तरह से अपनी सम्मति दे रही है। इतने में बिस्तर बिछाती हुई चमेली बोली:

'हाँ, एक बात तो कहनी रह ही गई।'

'कौन-सी?'

'लेडी मीनाक्षी तुम्हें बहुत याद करती हैं। तुम्हारे जाने के बाद से रोज एक दो बार आदमी भेजकर पुछवाती हैं।'

'हुँ।'

'आज तो तुमसे यह कहने के लिए ही मुझे खासकर बुलवाया था कि यदि तुम आ जाओ तो उनसे ज़रूर मिल लेना।'

किरीट कुछ न बोला। सात-सात दिन तक बाहर जाकर मीनाक्षी को भूलने का प्रयत्न करनेवाले का क्या अब भी छुटकारा न होगा?

'क्यों कुछ बोले नहीं?' चमेली ने पूछा।

'क्या बोलूँ? जो सँदेशा तूने कहा वह सुन लिया।'

'तो तुम मिल आओगे न ?'

'नहीं।'

'क्यों ?'

'तुझे सब कुछ जानने की पड़ी है क्या ?'

'नहीं-नहीं, इसलिए नहीं ; परन्तु कहीं कल फिर से पुछवाया तो मैं क्या जवाब दूँगी ?'

'कह देना कि किरीट अभी मिलने न आ सकेगा।'

'ठीक।'

थोड़ा ठहर, बिस्तर बिछाने का काम पूरा करने के बाद, चमेली ने फिर पूछा :

'और यदि वह स्वयं ही तुमसे मिलने चली आएँ तो ?'

'तो...तो फिर मिलना ही पड़ेगा, परन्तु वह यों बिना समय दिये नहीं आ सकतीं।'

चमेली ने फिर से यह याद नहीं दिलाया कि मीनाक्षी पहली बार उससे बिना समय दिये ही मिलने आई थी। वह सो गई। परन्तु किरीट सो न सका। उसने कन्दील दूर रख दिया और धीरे-धीरे झूलने लगा।

नींद आदमी की सबसे बड़ी मित्र है, परन्तु किसी-किसी अभागे को इस मित्र की प्राप्ति ही नहीं हो पाती। आकाश के तारे गिन-गिनकर वह थक जाता है। आँखें फाड़-फाड़कर वह हृदयाकाश की ओर देखता है। आकाश के तारों से भी अधिक प्रकाशवान असंख्य विचार-तारिकाएँ टिमटिमा कर उसे परेशान कर देती हैं। किरीट भी ऐसा ही अभागा था। उसे नींद आती ही नहीं थी !

फिर आज तो उसके लिए पलक मूँदना भी मुश्किल हो गया। खुली आँखों से ही वह पुरानी स्मृतियों की पुनरावृत्ति देखने लगा। उसके जीवन में कटुता भरी हुई थी। वह कटुता अतिशय घनीभूत हो गई और संयोगों ने उसे मनुष्य-जाति का दुश्मन बना दिया। तो

भी तीन व्यक्तियों की याद उसके हृदय में मृदुल भावनाओं का संचार करने में समर्थ थी। एक उसकी मा, दूसरी मीनाक्षी और तीसरी चमेली। आज चमेली ने अपनी विचित्र बातों से उसे विभ्रम में डाल दिया और फिर मीनाक्षी का उल्लेख कर उसके हृदय को हिला दिया। ऐसा हो ही नहीं सकता कि मीनाक्षी के साथ उसे अपनी मा की याद न आई हो। अपनी मा के कारण ही उसे मीनाक्षी से हाथ धोना पड़ा था, परन्तु उसमें मा का जरा भी दोष न था। मीनाक्षी से निराश होने के पहले ही उसकी मा मर गई थी। तब किसका दोष था? भाग्य ही का।

इस भाग्य का बनानेवाला ईश्वर हो, प्रकृति हो, समाज हो या चाहे जो हो! वह कोई भी क्यों न हो उसने किरीट के साथ भयंकर अन्याय किया था। जो उसका था, जो उसका हो सकता था वह सब उसके पास से छीन लिया गया और इसके लिए उसने कभी शिकायत तक नहीं की। उसके पास से जो कुछ छीन गया था, उसे पुनः प्राप्त करने में वह समर्थ था, पुनः प्राप्ति के प्रयत्न में था कि इतने में उसकी मीनाक्षी को उसी के मित्र सुरेन्द्र ने छीन लिया! मीनाक्षी के छिनते ही उसने सब कुछ छिन जाने दिया और निर्भय होकर वह समाज का दुश्मन बन गया।

समाज का दुश्मन? या समाज के शत्रुओं का दुश्मन? उसकी मान्यतानुसार समाज दो भागों में विभक्त हो गया था। एक वर्ग भोक्ताओं का और दूसरा वर्ग भोज्य का। कलापी की भोक्ता-भोज्य की मृदुल संभावनाओं की वहाँ गुंजाइश नहीं थी। किरीट की कल्पनानुसार भोक्ता शिकारी और भोज्य उसका शिकार था। एक वर्ग दूसरे वर्ग का खून चूसकर अपने आपको समृद्ध बना रहा था। भोक्ता भोज्य के प्रति दया, कृपा, उदारता बताने का सब प्रयत्न इसीलिए करता था कि जिससे भोज्य का खून बढ़े और वह खून भरपेट पिया जा सके।

जनसाधारण की भाषा में इस वर्गीकरण को धनवान और निर्धन, उच्च और नीच शब्दों द्वारा समझाया जा सकता है। निर्धनों के बलिदान पर ही धनिक धनवान बनते हैं। 'नीच' की सतत आहुति देकर ही 'उच्च' ऊँचा रहता है। धनवानों का धन-बल—पूँजी—मानव शरीर और मानव बुद्धि को खरीद लेता है। वह किसी ऐसी महासत्ता को अपने अधीन कर लेता है कि जिसके द्वारा निर्धन सदा-सर्वदा धनवानों को धन देने का यन्त्र ही बना रहे। कपड़ा बुननेवाला करघा सर्वदा वस्त्रहीन ही रहता है। अनाज पीसनेवाली चक्की पर नाज का एक दाना भी रह जाय तो उसे झाड़ लिया जाता है। लाखों करोड़ों मन अनाज उपजानेवाली धरती के भाग्य में तो हल द्वारा चीरा-फाड़ा जाना ही लिखा है। अमीरों के मतानुसार भी ग़रीब सदा ही धन पैदा करनेवाला एक महायन्त्र है। जिस तरह करघा अपने लिए कपड़े का टुकड़ा नहीं माँगता, चक्की अपने लिए आटे की चुटकी तक नहीं माँगती, और धरती अपने पोषण के लिए नाज का एक भी दाना नहीं माँगती, उसी तरह गरीबों को एक भी पैसा माँगे बिना अमीरों के लिए धन पैदा करते रहना चाहिये।

हाँ, करघा बराबर काम देता रहे इसलिए उसे साफ रखना और तेल देते रहना चाहिये, चक्की का पत्थर घिस न जाय इसलिए उसके खीले पर पाटे बाँधने चाहियें और जमीन से अधिक पैदावार हो इसलिए उसमें अच्छी पोषक खाद डालनी चाहिये; परन्तु यह सब किसलिए? अपना-अपना काम ठीक से करते रहें इसलिए। गरीब वर्ग को भी जीवित रखना चाहिये, अन्यथा धनिकों के लिए धनोपार्जन कौन करेगा? धनिकों के लिए—न कि अपने स्वयं के लिए—निर्धन वर्ग को जीना चाहिये।

जो करघा बेकार हो जाता है उसे कोई कौड़ी के भाव भी नहीं पूछता; टूटी चक्की घर के दरवाजे के आसपास भी एक अनावश्यक

चीज मालूम देती है, निरुपयोगी जमीन पर जानवर तक नहीं जाते। काम न करनेवाले—निरुत्पादक—ग़रीबों की भी इस भूमि पर क्या आवश्यकता है ? और जो अनावश्यक हो उसे जीवित ही क्यों रखा जाय ? ग़रीब काम करने के अयोग्य होते ही जीवित रहने का अधिकार खो बैठता है। ग़रीब को जीना हो, पोषण प्राप्त करना हो, तो उसे सदा काम करते रहना चाहिये। अगर वह बीमार हो जाय, उसके कुटुम्ब में बीमारी आ जाय, वह बूढ़ा या अशक्त हो जाय, या किसी दुर्घटना से अपंग हो जाय तो उसका जीवन अनावश्यक समझा जाना चाहिये। वर्तमान अर्थशास्त्र में ऐसे अनावश्यक जीवन को बनाये रखने की कोई व्यवस्था नहीं है। इसलिए उसे भूखों रहने या मर जाने की होशियारी दिखलानी चाहिये।

उसने ऐसी ही प्रत्यक्ष दार्शनिकता पर सामाजिक-रचना को देखा। ऐसे समाज को नष्ट करने की आवश्यकता है या नहीं ? उसमें बुद्धि थी, शिक्षा थी, संस्कार थे, फिर भी एक धनवान—सुरेन्द्र—के आगे उनका तिलभर भी उपयोग न हो सका। मीनाक्षी को त्याग देना पड़ा। क्यों ?

क्योंकि वह धनवान नहीं था।

इसलिए उसकी दुश्मनी सारे समाज से न थी ; परन्तु समाज की अपने स्वार्थानुकूल रचना करनेवाले धनिक वर्ग के साथ थी। ग़रीब तो पीड़ित, पददलित हैं ही। उनकी गिनती तो मात्र साधन के रूप में की जाती है। समाज में उनका अपना कोई स्थान नहीं। स्थान कुछ है भी तो वह धनिकों के हथियार के रूप में है इसलिए समाज में उनकी गिनती भी नहीं होती। समाज कहने से धनवानों के ही समाज का बोध होता है। और उनके विरुद्ध उसकी कुचली हुई आत्मा विद्रोह कर बैठी। ग़रीबी के कारण स्वाभाविक समझे जानेवाले अन्याय—अत्याचार—उसने स्वयं अनुभव किये थे।

कारण ?

१७

पुण्य ? नीति ? सदाचार ?
छे कोई मानवी मानवलोकमां !
मनमां ये न इच्छमां होय
पाप के अनाचार जेणे ! *

—न्हानालाल

वह जन्म का ही ग़रीब था। उसके माता-पिता गरीबी में सिर से पैर तक डूबे हुए थे। बँगले, हवेली और महलों में रहनेवाले दरिद्रता का वास्तविक स्वरूप शायद ही समझ सकें। दरिद्रता को समझने के लिए दरिद्र होकर दरिद्रता का अनुभव करना चाहिये। उसके पिता हरिहर एक गाँव में नाकेदार की नौकरी करते थे। उन्हें मासिक बीस रुपए वेतन मिलता था। उसी में उन्हें अपना, अपनी पत्नी मंगला का, वृद्ध माता-पिता का, एक विधवा बहिन और एक बालक किरीट का पालन-पोषण करना पड़ता था। हरिहर स्वयं अधिक पढ़ न सके थे; परन्तु शिक्षा के महत्त्व को वह खूब समझते थे। उनके अधिकारी अफसर ग्रेजुएट थे इसलिए वह स्वयं भी अपने पुत्र को

---

* पुण्य ? नीति ? सदाचार ?
है कोई नर मृत्यु-लोक में
मन में भी न इच्छा की हो
पाप या अनाचार की जिसने ?

ग्रेजुएट बनाकर नौकरी करनेवाले सैकड़ों 'साहब लोगों' में से एक 'साहब' बनाने की महत्त्वाकांक्षा रखते थे। अगर यह मान भी लिया जाय कि ग़रीबों के यहाँ मेहमान नहीं आते तो भी बीस रुपए में छः व्यक्तियों को पालने का दुस्तर भार उन पर आ पड़ा था।

हमारे देश में अर्थशास्त्र के विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती जाती है। आंकड़ों से वे ही साबित कर सकेंगे कि सवा तीन रुपए प्रति महीने में एक व्यक्ति का निर्वाह हो सकता है या नहीं। पुष्टिकर भोजन की बात को एक ओर रखकर, एक दिन के लिए प्रति व्यक्ति डेढ़ सेर के हिसाब से नाज माना जाय और उस नाज का भाव सस्ते-से-सस्ता दो रुपए मन रखा जाय तो भी एक आदमी के लिए तीस दिनों में डेढ़ रुपया खर्च पड़ेगा। नाकेदार, कारकुन, पाठशाला के शिक्षक आदि मुसद्दी वर्ग की नौकरीवालों से हम साधारणतया सफेद और अच्छे कपड़ों की आशा रखते हैं। सस्ते-से-सस्ते और कम से कम कपड़ों की कल्पना की जाय तो भी साल में एक धोती जोड़ा, एक जोड़ा कोट और एक जोड़ा कमीज पहिने बिना समाज में रहनेवालों का छुटकारा नहीं। ये छहों कपड़े—मय चार की सिलाई के बारह रुपए में तैयार हो जायँ तो भी प्रति व्यक्ति एक रुपया अवश्य ही खर्च बैठेगा। ऐसा कुटुम्ब यदि झोपड़ी बनाकर ही रहे तो भी साल में एक बार उसका छप्पर छाने का खर्च छः-आठ रुपया पड़ ही जायगा। यह खर्च प्रति मास चार आने के हिसाब से रख लिया जाय तो सवातीन रुपए प्रति मास पानेवाले के पौने तीन रुपए तो हो ही गये। यह मान लें कि ग़रीबों को स्वाद लेने का अधिकार केवल नमक-मिर्च में समाया हुआ है तो चार आने महीने की और वृद्धि करनी पड़ेगी। चार आने वह मौज-शौक के पीछे खर्च करता है, ऐसा माने तो एक आदमी ऊपर बताये हुए ढंग से तीन रुपए में अपना निर्वाह कर प्रतिमास चार आने की बचत कर सकता है!

उपरोक्त हिसाब में यही मानकर चला गया है कि गरीबों की जीभ में से स्वाद उड़ गया है; गरीबों को ठण्ड नहीं लगती; उन्हें ओढ़ने-बिछाने की आवश्यकता नहीं; उनके पाँव जूतों से सुरक्षित रखने जैसे नहीं; वे सब काम अपने हाथों कर लेते हैं, एक बार खरीदे हुए मिट्टी के बर्तन उनके यहाँ जीवन पर्यन्त चलते हैं; घी, दूध और शक्कर का उन्होंने बहिष्कार कर रखा है; त्योहार उनके लिए नहीं बने हैं; वे कभी बीमार नहीं पड़ते; बीमार पड़ने पर उनकी दवा-दारू मुफ्त होती है; रेलगाड़ी द्वारा यात्रा करने का उन्हें कभी काम नहीं पड़ता; शादी या ग़मी में उन्हें एक पाई भी खर्च नहीं करनी पड़ती, उनके यहाँ अतिथि कभी आते ही नहीं; बरसात में उन्हें छतरी की आवश्यकता नहीं पड़ती; उनके बालक खिलौना माँगते ही नहीं और उनके परिवार में कोई पढ़ता भी नहीं। इस तरह की नकारात्मक तालिका अभी और भी लम्बी बनाई जा सकती है।

परन्तु उपरोक्त तालिका में गिनाई हुई बात से ही किसी गरीब का वास्ता पड़ गया तो! उसका एक कोट खो गया! उसके जूतों को कुत्ता उठा ले गया। उसके घर मेहमान आ गये! अपने बालक के लिए खिलौना ला देने का उसका मन हो आया। प्रति वर्ष मलेरिया से पीड़ित हिन्दुस्तान की सत्तर प्रति सैकड़ा आबादी में उसकी गिनती हो गई। एक बालक के लिए पुस्तक ला देनी पड़ी। तो!

तो उसे अपनी चार आने की बड़ी भारी बचत—ऊपर की सब शर्तें पूरी होने के बाद होनेवाली बचत—की ओर दृष्टि डालनी चाहिये। बीस रुपये महीने की आमदनी में छः व्यक्तियों का निर्वाह करनेवाले व्यक्ति ही हिन्दुस्तान में अधिक हैं। शायद इतना भी मिलता है कि नहीं इसमें सन्देह है। अर्थशास्त्री इस बारे में अधिक बतला सकेंगे। ऐसा परिवार प्रति वर्ष अठारह रुपये बचाएगा। दस वर्ष में इस परिवार की पूँजी एक सौ अस्सी रुपये जितनी बड़ी भारी हो जायगी।

और बीस वर्षों में...भारतवर्ष की दरिद्रता के चित्रों को अधिक ध्यान से देखने से क्लेश के सिवा और क्या हाथ लगेगा ?

जीवन एक महान् प्रबल शक्ति है। वह जीना चाहती और जीवित रहने के लिए प्रयत्न करती है। अन्तिम साँस तक जीवित रहने के लिए वह छटपटाती है। पूँजीपतियों के समान ही गरीबों के हृदय में भी जीवनेच्छा रहती है। यदि बीस रुपये में निर्वाह न हो तो उसकी जीवनी शक्ति अधिक पोषण छीनने या चुरा लेने का प्रयत्न करती है! करे क्यों नहीं ? जो पैदा हुआ है वह जीवित रहने का प्रयत्न करता ही है। समाज यदि उसे जीवित रहने की सहूलियत नहीं दे तो वह स्वयं ही सहूलियतें पैदा करने का प्रयत्न करेगा। उस प्रयत्न में यदि समाज विघ्न डाले तो वह उसे धोखा देगा या लूटेगा। और समाज तथा अपने बीच के इस पारस्परिक संघर्ष में यदि वह जीवित न रह सका तो एक ऐसी हाय डालकर अपना जीवन छोड़ेगा कि उस हाय से सारा समाज जला ही करेगा।

'तुलसी हाय गरीब की !'

हरिहर शौकीन और उदार स्वभाव का था। गरीबों को ऐसा स्वभाव पुस नहीं सकता। वह अकसर अपने भाई-बन्दों और यार-दोस्तों को चाय पीने के लिए अपने यहाँ निमन्त्रित करता था। हाकिम-अमलों का आगत-स्वागत करने में वह एक ही था। अधिकारी को नई फसल चखनी हो, दूसरों के खर्चे से किसी की मेहमानदारी करना हो, सस्ते भाव की आड़ में मुफ्त अनाज खरीदना हो या घर-खर्च के लिए सस्ते दामों पटे बनवाने हों तो वह आसानी से ऐसा काम हरिहर को सौंप सकता था। यदि कभी किसी हाकिम को कम कीमत में गाय या घोड़ा खरीदना होता तो हरिहर के बिना उसका चलता ही न था। जो लोग यह नहीं जानते हों कि सस्तेपन, कम खर्च, कम क़ीमत आदि शब्दों का अर्थ अधिकारियों की भाषा में मुफ्त से होता

है, उन्हें यह शीघ्र ही सीख लेना चाहिये। अधिकारी तो सदा ही प्रामाणिक होते हैं। वे मुँह से यह कभी नहीं कहते कि उन्हें अमुक वस्तु मुफ़्त चाहिये। वे तो केवल उचित दामों में जो उन्हें पुस सके ऐसे दामों में खरीददारी करने के लिए आतुर रहते हैं। उचित-पुस सके ऐसी-कीमत का अर्थ 'मुफ़्त' से करनेवाले उसमें सम्मिलित हो जाते हैं तब वे बेचारे क्या करें? धीरे धीरे कम कीमत का अर्थ यदि उनके मन में भी मुफ्त से हो जाता है तो इसमें उनका क्या दोष? भाषा-शास्त्र में कई ऐसे भी शब्द हैं कि जिनका वर्तमान अर्थ उनके प्रारम्भिक अर्थ से बिलकुल विपरीत हो गया है।

हरिहर बीस रुपए में अपना और अपने परिवार का निर्वाह नहीं कर सकता था। अधिकारियों के आदर-सत्कार में से वह अपना भी कुछ फायदा कर लेता था। ऐसे नौकरों पर अफसरों की मेहरबानी भी बहुत होती है और हरिहर इस मेहरबानी का उपयोग प्रार्थियों का काम करवाने में करता था। अफसरों को साधारणतया जिस काम में छः महीने लगते हरिहर उसे एक महीने में करवा लेता। अफसर जिस काम को अकारण ही तै कर देने के लिए ललचाते उसे हरिहर प्रार्थी के हक़ में करवा लेता था। जनता को क़ायदे-क़ानून का जंजाल इतना मुश्किल मालूम पड़ता था कि हरिहर की सहायता उसको बहुत ही सुविधाप्रद हो गई थी। काम में थका देनेवाली देरी तथा कचहरी में बार-बार के धक्के खाने की झंझटों में फँसने के बजाय सब कोई हरिहर को दो-चार रुपए देकर जल्दी से काम निबटाने के लिए उत्सुक रहते थे। इस तरह लोकोपयोगी काम करके हरिहर अपने वेतन के अलावा उतनी ही रक़म और पैदा करके, अपनी दाल-रोटी चलाने का प्रयत्न करता था। उसका यह सिद्धान्त था कि जिसका काम बन जाय वह खुशी से जो कुछ दे दे वही ले लेना। काम होने से पहले, न तो कुछ माँगा जाय और न काम की कीमत ठहराई

जाय। इस नीति से अधिकारियों को प्रिय होने के साथ ही वह लोकप्रिय भी हो गया था।

अन्य गरीब नाकेदार हरिहर की इस लोकप्रियता को सह न सके; क्योंकि वे अपनी ग़रीबी मिटाने में हरिहर की तरह योग्य नहीं बन सके थे। हरिहर के विरुद्ध शिकायतें होने लगीं। उसके ऊपर यह अपराध रखा जाने लगा कि वह अफसरों के नाम पर पैसा खाता है। बात सच थी; परन्तु पैसे देकर अपना काम निकलवानेवाले लोगों का अधिकांश भाग कृतघ्न नहीं था। हरिहर को घूस देने की बात स्वयं पैसा देनेवाले भी स्वीकार नहीं करते थे; इसलिए अर्जियों से कुछ बना-बिगड़ा नहीं। तो भी हरिहर के खिलाफ छोटे-बड़े सभी दफ्तरों में इतनी अधिक अर्जियाँ पहुँचीं कि उससे अपरिचित अफसर भी उसका नाम जान गये और वह एक चालाक, अविश्वसनीय तथा खटपटी आदमी के रूप में पहिचाना जाने लगा। अन्त में प्रधानाधिकारी ने एक बहुत ही कड़े अफसर को जाँच के लिए नियुक्त किया।

यह कड़े अफसर स्वयं को इतना अच्छा समझते थे कि मानो इनकी सात पीढ़ियों में से कभी किसी ने घूस न ली हो और न ही आनेवाली सात पीढ़ियों तक कभी कोई घूस लेगा। वह रिश्वतखोरों के दुश्मन थे। रिश्वत के विरुद्ध उनके विचार इतने अधिक तीव्र हो गये थे कि उन्हें अपने सिवा बाकी सभी लोग रिश्वतखोर लगते थे। उन्हें विश्वास हो गया था कि उनके सिपाही, कारकुन और उनके मातहत काम करनेवाले अफसर सभी रिश्वत लेते हैं। इतना ही नहीं उनके मन में तो यहाँ तक बैठ गया था कि उनके उच्चाधिकारी भी घूस लेते हैं। दफ्तर का काम पूरा करने के बजाय वह इस बात की गुप्त रूप से जानकारी प्राप्त करने में तल्लीन रहा करते कि कौन-सा आदमी किससे कितनी घूस लेता है। उच्चाधिकारियों के बारे में कुछ कर सकना उनके लिए असम्भव होने से वे केवल उनकी रिश्वत

सम्बन्धी बातों का पता लगा मन ही मन उन्हें तिरस्कृत कर बैठ रहते ; परन्तु अपने अधीनस्थ किसी कर्मचारी के बारे में सतत खोज करते हुए यदि उन्हें रिश्वत का जरा-सा ही सूत्र मिल जाता हो उस रिश्वतखोर को जड़-मूल से उखाड़ फेंकने के लिए तैयार हो जाते। उन्हें रिश्वत के प्रति इतना अधिक क्रोध था कि यदि उनका वश चलता तो घूसखोरी के लिए फाँसी की सजा दे देते। 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत' गीता के इस महावाक्य को थोड़े-से परिवर्तन के साथ यदि घूस के लिए लागू कर दिया जाय तो सहज ही कहा जा सकता है कि घूस को निर्मूल करने के लिए मानो स्वयं परमेश्वर ही इस अफसर के रूप में प्रकट हुए हों ! उनके मन की धारणा ऐसी ही थी।

दिग्विजयी महान् सिकन्दर जैसे आत्माभिमानी इस होशियार अफसर ने, चीते से भी अधिक भयंकर दिखाई पड़नेवाले रिश्वतखोर नाकेदार पर धावा बोला। अफसरों की कृपा से ही परिचित हरिहर इस क्रोध को सह न सका। जिस-जिस अफसर का काम वह कर चुका था उन सबके पास दौड़कर उसने उनसे अपने बारे में सिफारिश करने की प्रार्थना की। सभी ने उसे यह मौखिक आश्वासन दिया कि 'रूबरू में सिफारिश कर देंगे।' परन्तु जब उसने सिफारिशी चिट्ठियाँ माँगनी शुरू कीं तो सभी बहाने बनाने लगे।

'देख भाई, वह बहुत बुरा आदमी है। मैं चिट्ठी लिखूँगा तो जान-बूझकर तेरा काम बिगाड़ देगा।' एक ने कहा।

'इस आदमी का तो नाम ही मत लो ! इतना बिगड़ैल है कि हमारी चिट्ठी भी 'फाइल' कर देगा !' दूसरे ने कहा।

'सबसे अच्छा तो यह है कि मैं इसके साले को तुम्हारी सिफारिश करने के लिए कहूँगा। उसके सिवा वह दूसरे किसी की कोई भी बात मानने का नहीं।' तीसरे ने कहा।

'चिट्ठी लिखना मेरे सिद्धान्त के विरुद्ध है। पर मैं स्वयं तेरी मौखिक सिफारिश कर दूँगा।' चौथे ने कहा।

परन्तु किसी ने सिफारिश नहीं की और यदि की भी होती तो घूस को नष्ट करने के लिए अवतार लेनेवाले परमात्मा के अंशावतार ने उसे माना भी होता या नहीं, यह एक बहुत बड़ा सवाल है। 'व्रजलाल' या 'वरज भाई साहब' के नाम से पुकारे जानेवाले इन कड़े अफसर के बारे में यह भी प्रख्यात था कि वह किसी की सिफारिश पर बिलकुल ही ध्यान नहीं देते हैं।

गाँव में अपना पड़ाव डालकर बहुत ही बारीकी से वे नाकेदार द्वारा घूस लिये जाने के मामले की जाँच-पड़ताल करने लगे। गाँव के प्रत्येक व्यक्ति को फुसला और धमकाकर पूछा कि नाकेदार घूस लेता है या नहीं। पाठशाला के बालकों से भी उन्होंने बड़ी ही मुस्तैदी से इस बारे में पूछा। उनका वश चलता तो जानवरों और पत्थरों से भी पूछते। आस-पास के गाँवों में दौरा करके इस बारे में जाँच की, परन्तु किसी ने यह नहीं कहा कि नाकेदार घूस लेता है।

शिकार न मिलने पर भूखा बाघ जिस तरह क्रोधित हो जाता है उसी तरह वरज भाई साहब क्रोधित हो गये। सद्गुणी व्यक्तियों के चेहरे आमतौर पर काटनेवाले और डरावने होते हैं। उनके सिवा बाक़ी के सब लोगों में एक आध दुर्गुण तो अवश्य ही होता है, इस-लिए उनमें दूसरों के प्रति क्रोध या तिरस्कार की भावना रहती है। वरज भाई साहब का चेहरा जब काटने जैसा नहीं होता तो डरावना होता था। जब से उन्हें यह मालूम हुआ कि नाकेदार हरिहर के विरुद्ध की गई जाँच-पड़ताल निष्फल है तब से उन्होंने बाघ और शेर का वेश बना लिया। उनके पास आते हुए सब कोई थरथर काँपने लगे।

अन्त में उन्होंने अपराधी हरिहर को अपनी पेशी में बुलाया। बलि-पशु की तरह काँपता हुआ बीस रुपये का वह नाकेदार पाँच सौ

रुपए पानेवाले अफ़सर की उग्र उपस्थिति में हाजिर हुआ। बहुत झुककर हरिहर ने सलाम किया। बड़े आदमी छोटों का अभिवादन स्वीकार करने के लिए बाधित नहीं हैं और फिर यदि वह काम में या गुस्से में हों तब तो हर्गिज़ नहीं। साहब ने गर्जना की :

'तू ही वह बदमाश नाकेदार है ?'

कितने ही प्रश्न ऐसे होते हैं कि जिनका उत्तर 'हाँ' या 'ना' में नहीं दिया जा सकता। हरिहर ने जवाब दिया :

'आप जो भी कहें! मैं तो एक गरीब आदमी हूँ!'

'गरीब आदमी है.? मैं तुझे खूब पहिचानता हूँ। मैं तुझे ठीक कर दूँगा।'

सवाल-जवाब बराबर के लड़नेवालों में ही हो सकते हैं। हरिहर इस धमकी का प्रत्युत्तर नहीं दे सकता था।

'बोल, तू घूस लेता है। स्वीकार करता है या नहीं ?' साहब का गर्जन-तर्जन चालू रहा।

'साहब, मैं घूस नहीं लेता।' किसी का काम करने पर यदि वह प्रसन्नता से दो-चार रुपये दे तो ले लेने को हरिहर रिश्वत नहीं कह सकता था।

'मेरे पास सबूत हैं।' अपराधी से सच्ची बात निकलवाने के लिए मैं झूठ बोल रहा हूँ यह उस अफ़सर को क्षणभर के लिए भी नहीं मालूम हुआ।

'साहब, ऐसा कोई नहीं कहेगा कि मैं घूस लेता हूँ। और अगर किसी ने कहा है तो वह झूठ है।'

'हाँ, अकेला तू ही सच्चा है ? हरामखोर, तेरी शामत आ पहुँची है!' अपराधी ताबेदार गालियाँ भी खाता है।

'सरकार, मैं कुटुम्ब-परिवारवाला आदमी हूँ। मुझ पर दया कीजियेगा।'

'झूठे आदमी पर दया? बोल, सच बोल, नहीं तो तेरी मौत ही आई समझना!' कई बार मार डालने की ईश्वरीय सत्ता को आदमी छीन लेता है। साहब मेज पर हाथ पटककर चिल्लाये। हरिहर और ज्यादा काँपने लगा।

'साहब, गरीब आदमी हूँ। कभी भूल हो गई होगी। आप तो दयालु हैं।' साहब जरा खुश हुए। अपराधी अपराध स्वीकार करने जा रहा था।

'क्यों? भूल स्वीकार करता है?'

'कृपानिधान आदम जात हूँ। किसी का काम करने पर उसने खुशी से दो पैसे दिये तो लिये होंगे, परन्तु मैंने किसी का दिल नहीं दुखाया है।'

साहब ने कागज-कलम लिया और प्रसन्नता-पूर्वक हरिहर की स्वीकृति लिखने बैठे। उन्हें जो ठीक लगा सो लिखा और फिर पूछा:

'बतला किस-किस के पास से पैसे लिये हैं?'

हरिहर सँभला। वह समझ गया कि साहब उसके मुँह से उन्हें ठीक मालूम पड़ती बात कबूलवाना चाहते हैं।

'साहब, मुझ गरीब को क्यों मारे डालते हैं! मैंने तो किसी के पास से रिश्वत नहीं ली है!'

'बदमाश, अब झूठ बोलता है? घूस लेना स्वीकार करके अब जवाब लिखाते समय नाहीं करता है।'

सत्ताधीश और सत्ता-रहित का सम्बन्ध बहुत समय पहले से ईसप ने भेड़िये और भेड़ की कहानी में निश्चित किया है। समय के साथ उसमें कुछ अधिक परिवर्तन हुआ नहीं दीखता। साहब ने जाँच की रिपोर्ट लिखी। उसमें उन्होंने लिखा कि 'नाकेदार का अपने गाँव पर इतना अधिक प्रभाव है कि कोई उसके खिलाफ गवाही नहीं दे सकता। यह निश्चित है कि नाकेदार ने घूस खूब ली है। वह

जिस शान से रहता है उस शान से बीस रुपए पानेवाला कदापि नहीं रह सकता। उसका लड़का अंग्रेज़ी पढ़ता है और इस खर्च की गुंजाइश उसके वेतन में है ही नहीं। इससे साबित होता है कि वह घूस लेता है। घूस लेने की बात उसने मेरे सामने कबूल की थी परन्तु लिखाते समय उसने बात पलट दी। ऐसे आदमी को नौकरी से अलग कर देना चाहिये।'

साहब का निर्णय मान्य रहा और हरिहर को नौकरी से हाथ धोना पड़ा।

१८

अरे ! जे छायामां कमनसीब पक्षी जई बसे,
तरु ये ते सूके, गहन गति एवी हरि तणी !
उडी जातां छाया गरीब कंई पंखी रडवडे,
अहीं संसार अे बहु बखत कें मालुम पडे।*

—कलापी

किसी भी अपराध का बचाव नहीं किया जा सकता ; किसी भी दोष को सद्‌गुण मानना निरर्थक है ; परन्तु दोषी व्यक्ति का—अपराधी का—तो बचाव किया ही जा सकता है। उसका बचाव करना आवश्यक भी है। बहुत कम व्यक्ति जन्म से दोषी होते हैं। एक साधु और एक विषयी गुण-दोष के लगभग एक-से संस्कार लेकर पैदा होते हैं। स्वप्रयत्न से गुण या दोष की वृद्धि करनेवाले भी थोड़े ही हैं। अधिकांश में तो मनुष्य वातावरण के अनुसार ही बनाता है। संयोगानुसार वह गुण या दोष को ग्रहण कर लेता है। किसी मनुष्य में सद्‌गुण अधिक हों तो समझना चाहिये कि उसके जन्म-जात शुभ संस्कारों को विकसित होने के लिए अनुकूल वातावरण मिला है। दूषित आचरणोंवाले व्यक्ति को देखकर यही समझना चाहिये कि

* अरे ! जिस छाया में अभागे पंछी जा बसते,
वृक्ष वह भी सूखा, गहन ऐसी गति हरि की !
छाया उड़ते ही कई ग़रीब पंछी भटकते,
इस जग में यह कई बार क्या मालूम पड़े।

उसका लालन-पालन जन्म-सिद्ध अशुभ संस्कारों को विकसित करने-वाली परिस्थिति में हुआ है। साधु को देखकर यदि हम में उसके प्रति पूज्य-भाव उत्पन्न हों तो हानि नहीं, परन्तु धूल में लोटते हुए एक शराबी या जेल काटते हुए एक लुटेरे को देखकर यदि उसके प्रति घृणा उत्पन्न हो तो हमें याद रखना चाहिये कि उस शराबी या लुटेरे के स्थान पर हम नहीं हैं तो इसमें हमारे महत्त्व की अपेक्षा हमें प्राप्त होनेवाले संयोगों का ही अधिक महत्त्व है। उन संयोगों के बदौलत ही उस अभागे दुर्गुणी मनुष्य के साथ हमारा स्थान परिवर्तन होने में कुछ भी देर नहीं लगेगी।

यह सच है कि हरिहर ने घूस ली थी; परन्तु उसने किसी पर अत्याचार नहीं किया था। जिस तिसका उसने पैसा लिया था। हरिहर की व्याख्यानुसार इस काम का समावेश रिश्वत में नहीं किया जा सकता। वास्तव में यह कहना कठिन है कि रिश्वत किसे कहा जाय। उच्च अधिकारियों द्वारा ली जानेवाली घूस भेंट कहलाती है। साधारण नौकर यदि भेंट भी लें तो वह रिश्वत कही जाती है। लोगों से डालियाँ लेने; आतिथ्य भुगतने, गाड़ी-घोड़े का इस्तेमाल करने को अफ़सर रिश्वत नहीं समझते: यह प्रथा तो सामाजिक सम्बन्ध और शिष्टाचार समझी जाती है। यदि इस शिष्टाचार को नक़द रुपए में बदल दिया जाय तो ग़रीब नाकेदार की नक़द घूस से यह रकम कदापि कम न होगी। यह सच है कि किसी की मोटर का इस्तेमाल करते समय अफ़सर व्यावहारिक शिष्टाचार का ही पालन करता है; परन्तु इस शिष्टाचार में मोटर की घिसाई, ड्राइवर का वेतन, पेट्रोल की कीमत और शिष्टाचारी मोटर-स्वामी को यदि काम पड़ने पर किराये की गाड़ी में जाना पड़े तो उस किराये की रक़म का विचार कर यदि कोई साधारण नौकर यों कहे कि अफ़सर भी इस रूप में घूस लेता है तो उसके विरुद्ध नैतिक दृष्टि से दलील करना मुश्किल हो जायगा।

फिर अफ़सर को नक़द रुपये में घूस लेने की आवश्यकता ही क्या है ? उसका वेतन—भारी वेतन—क्या लूट नहीं है ? दो सौ रुपये में जिसका निर्वाह होना चाहिये वह पाँच सौ या पाँच हजार लेकर कितने आदमियों की रोटी छीन लेता है ? एक आदमी का पच्चीस रुपये में निर्वाह होना चाहिये यह माननेवाला न्यायी अफ़सर स्वयं दो सौ, पाँच सौ रुपये वेतन लेकर दूसरे की रिश्वतखोरी की जाँच करने बैठे तो कहाँ तक न्याय है ? पच्चीस रुपये पानेवाला ऐसा क्यों न समझे कि पच्चीस से ऊपर जो व्यक्ति जितनी ही अधिक रकम लेते हैं वे सब लूट-पाट ही करते हैं ?

किसी को बीस-पच्चीस रुपये मासिक वेतन देकर उतने में चार छः व्यक्तियों का प्रामाणिकता से निर्वाह करवाने की आशा रखनेवाली संस्थाएँ या व्यक्ति क्या रेती में से तेल निकालने की आशा नहीं करते हैं ? इतना कम वेतन देकर कि जिससे अधपेट भोजन की भी व्यवस्था न हो सके, यह पूछना कि 'तू रिश्वत लेता है, पूछनेवाले में क्या दिखलाता है ? यह मानना कि बीस रुपये वेतन पानेवाला घूस नहीं लेता मूर्खता की पराकाष्ठा है : प्रामाणिक रहने की आकस्मिक सहूलियत को सद्गुण समझ बैठने के घमण्ड का परिणाम है ।

हरिहर नौकरी छूटने की खबर लेकर घर आया और सिर पर हाथ देकर बैठ गया । उसके शरीर में से शक्ति ही निकल गई । नौकरी छुड़ानेवाले को गाली देने तक की शक्ति उसमें नहीं रही । उसके वृद्ध पिता ने उसे हिम्मत दी :

'बेटा, घबराता क्यों है ? बीस रुपड्डी की नौकरी गई तो क्या हुआ ? ऐसी तो कितनी ही नौकरियाँ तुझे मिल जाएँगी ।'

पत्नी ने आश्वासन दिया :

'तुम ऐसे ढीले क्या हो गये ? मेरे दो गहने बेच लेंगे तो आराम

से चार महीने कट जाएँगे। इतने में कोई धन्धा-रोजगार ढूँढ़ लेना।'

'पर अब मुझे रखेगा कौन? निकालने की बजाय यदि मेरा इस्तीफा लिया गया होता तो मैं कहीं दूसरी नौकरी तो कर सकता था। इतनी मेहरबानी भी नहीं की। मेरी भविष्य की रोजी भी छीन ली।'

न्यायी सत्ताधीश दया करने की निर्बलता नहीं दिखाते। उनके न्याय में मुफलिस के भावी निर्वाह की गुंजाइश ही नहीं होती। अपराधी के भूत और वर्तमान ही वह देखते हैं। उसके भविष्यत् की उन्हें पर्वाह नहीं होती। दण्ड देते समय वे भूल जाते हैं कि मनुष्य के भविष्यत् काल भी होता है।

'क्या मेरे हाथ-पाँव नहीं हैं? मुझे दलने-पीसने से तो कोई नहीं न रोक सकता।' पत्नी ने और भी आश्वासन दिया।

हाल ही अँग्रेजी की पाँचवीं कक्षा में ऊँचे क्रम से उत्तीर्ण होनेवाले किशोरवय किरीट को भी मालूम हो गया कि उसके पिता की नौकरी छूट गई है। वह कुछ न बोला, परन्तु उसका खुला हुआ हृदय संकुचित हो गया।

हरिहर ने गाँव छोड़कर नौकरी के लिए शहर का रास्ता पकड़ा। शहर में नौकरी पाने का उसने हर वक्त प्रयत्न किया। सरकारी नौकरी तो अब उसे मिल नहीं सकती थी। खानगी (निजी) नौकरियों में स्वाभाविकतया सभी उससे पूछते कि पहलेवाली नौकरी क्यों छोड़नी पड़ी? अपने साथ अन्याय किये जाने की चाहे जैसी बात वह कहता परन्तु नौकरी से निकाले गये हरिहर पर कोई भी समझदार आदमी विश्वास नहीं करता था। हिसाब-किताब में खूब गड़बड़ी करके सरकार और ग्राहकों को धोखा देनेवाला व्यापारी अपने मुनीमों में बहुत ही प्रामाणिकता चाहता है। ब्याज-बट्टे के फन्दे बना, देनदार को अपने पंजे में जकड़कर चूसनेवाला साहूकार बही-खाते लिखनेवाले में एक राजपूत की दृढ़ स्वामि-भक्ति देखने का इच्छुक होता है। 'शेयर

होल्डर्स'—हिस्सेदारों—के पैसों पर मोटर और बँगलों का मजा उड़ाने-वाले 'मिल एजेण्टों' की पहली शर्त यह होती है कि मिल के छोटे से छोटे नौकर को सूत का एक धागा तक नहीं उड़ाना चाहिये। सद्‌गुण का यह अहोभाग्य ही समझना चाहिये कि उसकी इतनी क़द्र होती है।

हरिहर तो अप्रामाणिकता के लिए सरकारी नौकरी से निकाला गया था। अब उसकी समझ में आया कि प्रामाणिकता की तो घर-घर आवश्यकता है। वह अब प्रामाणिक रह सकता था। उसने ऐसा दृढ़ संकल्प कर लिया कि खुशी से देने पर भी किसी की पाई तक न ली जाय; परन्तु इस संल्कप का उपयोग करने की परिस्थिति ही पैदा न हुई। संसार यह मानने को तैयार न था कि दूषित आदमी सुधर सकता है। संसार तो निर्दोषिता की छाप चाहता था। अप्रामाणिक होकर भी यदि वह प्रामाणिकता की छाप बनाये रख सका होता तो बड़े आद-मियों की तरह निर्भयता से कहीं भी जम जाता।

परन्तु अब कोई भी उसे नौकरी देने को तैयार न था। 'जगह खाली नहीं है।' थोड़े दिन बाद देखेंगे।' 'अभी ही जगह भर गई।' 'कभी-कभी आते रहना, मौका देखकर तुम्हें लगा देंगे।' ऐसे-ऐसे उत्तर उसे छिपे नकार के साथ मिलते थे।

दिन पर दिन उसकी निराशा बढ़ती गई। यह कहने पर भी कि 'काम देखकर वेतन देना' किसी को उसका काम देखने की गर्ज नहीं थी। 'वेतन बिलकुल मत देना, केवल काम ही करने दो' उसकी यह माँग लोगों को और भी भयंकर लगती थी। सारे दिन भर भटकने के बाद वह आधी रात गये घर लौटता। घर आकर सोने के बदले वह बाकी बची हुई रात में दिन की असफलताओं पर विचार करता और दूसरे दिन नौकरी पाने की नई तदबीरों को सोचता था।

देखते ही देखते उसके चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गईं। एक-दो

आदमियों ने उसे नौकर रख लिया, परन्तु सुबह के चार बजे से रात के बारह बजे तक चलनेवाली उन नौकरियों ने उसके बालों को सफेद कर दिया। इसी हाय-तोबा में हरिहर बीमार पड़ गया और शरीर में बीमारी का सामना करने की शक्ति न होने से थोड़े दिन बाद मर गया।

हरिहर में किरीट को पढ़ाने की बहुत ही उमंग थी। मरते-मरते भी उसने पुत्र से कहा :

'किरीट, जैसे भी बने अपनी पढ़ाई पूरी करना हाँ।'

किरीट को एक अन्याय सालता था। पिता की मृत्यु को उसने समाज का दूसरा अपराध गिना। थोड़े ही समय में उसने मैट्रिक की परीक्षा ऊँची श्रेणी में पास की। उसे इनाम और छात्र-वृत्तियाँ मिलीं।

सम्मान-पूर्वक वह कॉलेज में प्रविष्ट हो गया।

शहर में किराया अधिक होने से हरिहर ने शहर के बाहर एक बँगले से लगी हुई चाल में कोठरी किराये पर ली थी। बँगले के स्वामी एक प्रतिष्ठित वकील थे। उनका लड़का सुरेन्द्र किरीट का सह-पाठी था। सुरेन्द्र भी बहुत ही होशियार विद्यार्थी था। सुरेन्द्र और किरीट के बीच अच्छा परिचय हो गया, परन्तु किरीट का स्वभाव गम्भीर और एकाकी होने की वजह से जितनी शीघ्रता से होनी चाहिए उतनी शीघ्रता से मैत्री न हो सकी। सुरेन्द्र गाड़ी में बैठकर विद्यालय आता-जाता था। वह गाड़ी में बैठने के लिए किरीट से बहुत आग्रह करता, परन्तु किरीट तो पैदल चलना ही पसन्द करता था। ग़रीब विद्यार्थी में बूट पहिनने की सामर्थ्य नहीं थी। किरीट ज्यादातर नंगे पाँव ही विद्यालय जाता था। 'उघाड़ पगा' (नंगे पाँववाला) कहकर उसकी मज़ाक उड़ानेवाले भी बहुत-से थे। पाँव और उसकी अँगुलियों को बदसूरत बनानेवाली बूट पहिनने की प्रथा वर्तमान सभ्यता का मुख्य अंग समझी जाती है। किरीट का नंगे पाँव घूमना सुरेन्द्र

को अच्छा न लगा। उसने एक जोड़ा अच्छे बूट नौकर की मार्फत किरीट को भिजवाए।

'भाई ने यह बूट भेजे हैं।' नौकर ने किरीट से कहा।

'किस लिए? मैंने तो मँगवाए नहीं थे!' किरीट बोला।

'तुम्हारे पहिनने के लिए भेजे हैं।

'वापिस लेजा। मुझे नहीं पहिनना। मैं अभी बूट नहीं माँगने लगा हूँ।' किरीट ने ज़रा गुस्से में कहा।

नौकर लौट गया। जाते-जाते वह बड़बड़ाया :

'कितनी घमण्डी है।'

सुरेन्द्र कई बार उसे घर बुलाता था। घर पास ही थे फिर भी शायद ही कभी किरीट सुरेन्द्र के यहाँ जाता, परन्तु सुरेन्द्र के आग्रह करने पर शिष्टाचार के खातिर भी उसे जाना ही पड़ता था। पढ़ने-लिखने की बात हो चुकने पर धनिक सुरेन्द्र को अपने कपड़े, 'फर्निचर' और गाड़ी-घोड़े की बात करनी रह जाती।

'यह सूट दो सौ रुपए में बना...ऐसी एक दर्जन रेशमीन कमीजें अभी सिलवाई हैं...खास भुज के कारीगर को सामने बैठाकर ये मीनाकारी के बटन बनवाये हैं...देख यह ऊनी कपड़ा घोड़े की झूल के लिए मँगवाया है।'

सुरेन्द्र की ऐसी-ऐसी बातें सुनकर किरीट की परेशानी बढ़ जाती थी। धनिकों के प्रति उसकी वैर-वृत्ति और जोर से धधक उठती थी।

'मेरे पास इस तरह की चीजें कुछ नहीं है। क्या इसलिए सुरेन्द्र मुझे यह सब बतलाता है?'

सुरेन्द्र इसलिए कपड़े नहीं दिखलाता था। वह तो केवल इस स्वाभाविक अहंता से प्रेरित होकर सब कुछ दिखलाता था कि उसका मित्र देखकर प्रसन्न हो और हृदय से सुरेन्द्र के वैभव को स्वीकार करे।

कभी सुरेन्द्र पूछता :

'तू दो-एक कमीज़ लेगा ?'

'नहीं-नहीं, मैं क्या करूँगा ?' सहज तिरस्कार से किरीट जवाब देता।

'तू मेरी गाड़ी में क्यों नहीं आता ?' सुरेन्द्र का आग्रह होते हुए भी किरीट गाड़ी से जाने का समय चुकाता था।

'चलकर जाने से मेरी कसरत हो जाती है।'

'गाड़ी में आने से तुझे क्रिकेट खेलने का समय मिल जाया करेगा। देख, मैंने यह नया सामान मँगवाया है।'

किरीट इसका कुछ भी जवाब नहीं देता था और न वह कभी गाड़ी में ही बैठता था। उसकी मा ने एक दिन कहा :

'सुरेन्द्र भाई इतना-इतना कहते हैं फिर भी तू कभी उनकी गाड़ी में क्यों नहीं बैठता ?'

'मैं यों पराये की गाड़ी के आस-पास भिखारी की तरह किसलिए नाचता फिरूँ ?' किरीट ने जवाब दिया। उसकी मा समझ गई कि किरीट किसी की कृपा सह नहीं सकता।

उसकी माता सुरेन्द्र के घर आती-जाती और कुछ काम-काज भी करती थी। वैधव्य का महान् दुःख सहकर परिवार का पालन-पोषण करने के लिए प्रयत्न करनेवाली विधवा माता जगत् का परम पूज्य और परम दर्शनीय दृश्य है। यह समझ में नहीं आता कि पति के विरह का दुःख वह कहाँ छिपा रखती है। यह कोई नहीं जान पाता कि परिवार की रक्षा करने की शक्ति उसके शरीर में कहाँ से आ जाती है ! अपनी सन्तान ही उसका सर्वस्व बन जाती है। किरीट की मा किसी का पानी भरती, किसी का नाज पीसती, किसी के बर्तन मलती और घर में किसी को पता न लगने देती कि वह ऐसे शारीरिक कष्टों को सहकर सबका निर्वाह करती है। अकेला किरीट इसे देखे

बिना रह नहीं सका। अपनी मा पर पड़नेवाले दुःखों को देखकर संसार के प्रति उसका वैर तीव्रतम होता गया।

वह खुद भी माता की यथाशक्ति सहायता करता था। छोटी-सी कोठरी झाड़नी हो तो किरीट को शर्म नहीं आती थी। अपनी मा या दादा-दादी के कपड़े धोने में वह छुटपन नहीं समझता था। यह सब काम वह करता; परन्तु इसमें गरीबी की हेंकड़ी तो दिखाई ही देती थी। प्रत्येक काम करते समय वह पूँजीपतियों का दुश्मन बनता था। हाँ, उसकी मा शायद ही उसे कोई काम करने देती थी। फिर भी स्कूल या कॉलेज के खेलों में भाग लिये बिना पढ़ाई समाप्त होते ही वह सीधा घर ही लौट आता था।

हरिहर के मरने के बाद उसके वृद्ध माता-पिता भी अधिक समय तक जीवित न रह सके। अत्यधिक दुःख मनुष्य को जीने नहीं देता। घर में केवल दो प्राणी—किरीट और उसकी मा रह गये। किरीट को थोड़ी-सी छात्र-वृत्ति मिलने पर उसकी मा को लाख रुपये मिलने के बराबर प्रसन्नता हुई। इसी बीच सुरेन्द्र के पिता ने किरीट को बुलाकर पूछा :

'किरीट, तुझे समय हो तो क्या दो घण्टे के लिये 'ट्यूशन' कर सकेगा?'

सुरेन्द्र ने पहले ही उसे यह समाचार कह दिया था। किरीट ने जवाब दिया :

'जी हाँ। मैं दो घण्टे दे सकूँगा।'

'परन्तु ज़रा दूर जाना पड़ेगा।'

'मेरी साइकिल ले लिया करेगा।' सुरेन्द्र ने कहा।

पराई साइकल का उपयोग करने की सूचना में सन्निहित महरबानी को किरीट सह न सका।

'मुझे साइकल चलानी नहीं आती, परन्तु इससे कोई हर्ज नहीं।

मैं दो घण्टे खुशी से पढ़ा सकूँगा।'

'देख, बड़े आदमी की लड़की है। अंग्रेजी की पाँचवीं कक्षा में पढ़ती है। उसे पढ़ाना है। वेतन क्या लेगा?

'जो भी दे दें। मुझे मालूम नहीं कि क्या लेना चाहिये।'

सुरेन्द्र के पिता ऐसी सरलता देखकर हँसे और बोले :

'पच्चीस रुपये महीना देंगे। भले आदमी हैं। किसी दिन काम ही आएँगे।'

सुरेन्द्र के पिता और मीनाक्षी के पिता दोनो आपस में मित्र थे। दोनो के माता-पिता की यह इच्छा थी कि सुरेन्द्र और मीनाक्षी बड़े होकर पढ़ाई समाप्त कर लें तो एक दूसरे का आपस में विवाह कर दिया जाय। मीनाक्षी के पिता ने अपनी लड़की के लिए एक शिक्षक की आवश्यकता के बारे में सुरेन्द्र के पिता से कहा था। किरीट की स्थिति और योग्यता के बारे में जानकारी होने से सुरेन्द्र के पिता ने सुरेन्द्र से कहकर किरीट को बुलवाया। किरीट की सहायता करने का मौक़ा पाकर सुरेन्द्र को प्रसन्नता हुई। उगते यौवन की इस आकांक्षा से कि, मीनाक्षी को अपना ही मित्र पढ़ाएगा इसलिए उसे मिलने और चिट्ठी लिखने का भी मौक़ा मिलता रहेगा, सुरेन्द्र को और भी आनन्द हुआ।

किरीट ने पढ़ाना स्वीकार कर लिया। सुरेन्द्र के पिता की चिट्ठी लेकर वह मीनाक्षी के पिता के पास गया। बिलकुल सीधे-सादे, मित-भाषी, गंभीर और युवकोचित बाहरी टीमटाम से रहित किरीट को सभी ने मीनाक्षी के शिक्षक रूप में पसन्द किया। सफाई और टीमटाम पसन्द मीनाक्षी पहले तो अपने शिक्षक को देखकर हँसी। पतलून, कोट और टोप से सुसज्जित शिक्षक की उसे आशा थी। बड़े आदमी नौकरों से भी टीमटाम की आशा रखते हैं, परन्तु किरीट की पोशाक पर से दृष्टि हटाकर उसके चेहरे की ओर देखने पर पता चला कि

वह बदसूरत नहीं था। फिर पढ़ने में हमेशा उसके प्रथम रहने से भी मीनाक्षी की अहंमन्यता पोषित हुई।

घर आकर किरीट ने अपनी मा को यह बात सुनाई। कई मुसीबतें सहकर, लड़के को मैट्रिक करानेवाली कृतकृत्य माता को इतना अधिक सन्तोष हुआ मानो लाखों रुपए मिल गये हों। हरिहर की सारी उम्र बीत गई पर बीस के पचीस रुपए न हुए; परन्तु किरीट को तो पढ़ते-पढ़ते ही पचीस रुपए मिलने की शुरूआत हो जाने से माता को अपार आनन्द हुआ। किरीट की इच्छा के विरुद्ध उसने जाकर सुरेन्द्र के माता-पिता के प्रति अतिशय कृतज्ञता प्रकट की। कई वर्षों बाद माता का हृदय आनन्दित हुआ था।

दूसरे दिन सवेरे किरीट मीनाक्षी को पढ़ाकर घर लौटा। मा बैठी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। कमाऊ लड़के के चेहरे पर उसे एक अद्भुत सौन्दर्य दीख पड़ा। मा ने उसके आगे दूध का प्याला रखा। मा जाने किस तरह से कभी-कभी किरीट को दूध पिलाती या अच्छा खाने को देती थी। गरीब मा के साधन भी गरीब ही होते; परन्तु उसके हृदय में तो बेटे के लिए कर्ण की उदारता रहती। स्वयं भूखी रहकर, चार घड़े पानी अधिक भरकर वह पुत्र का मुँह मीठा करती है।

'अब मैं रोज तेरे लिए दूध तैयार कर रखूँगी, हाँ बेटा!'

'नहीं मा! रोज-रोज मुझे नहीं भायेगा।'

'ऐसा भी कहीं हो सकता है। दो घण्टे पढ़ाना और फिर पढ़ना—शरीर कैसे सह सकता है।'

'परन्तु मा पचीस रुपए में दूध कैसे आ सकता है।'

"इसकी फिक्र तुझे क्यों? इतनी कंजूसी कहाँ से? तेरे पिता तो बीस रुपए में तुझे मुँह मँगा देते थे। तू अपने पचीस रुपए अपने पास ही रखना। समझा!'

'तो, मैं दूध पीऊँ, अपनी कमाई जमा करूँ और तू लोगों का बर्तन-पानी करती रहे, क्यों ?'

'हमारा तो शरीर ही ऐसा ठहरा। काम न हो तो हड्डियाँ ही न मुड़ें।'

'मा, आज से मैं तुझे साफ मना करता हूँ। तू न तो किसी का चौका-बर्तन और न किसी का आटा पीसना।'

'बेटा, पढ़-लिखकर जब तू सौ रुपए कमाने लग जायगा तो फिर मैं हाथ तक नहीं हिलाऊँगी।'

'नहीं, यह नहीं हो सकता। अगर तू किसी की मजूरी करेगी तो मैं यह नौकरी ही छोड़ दूँगा। पच्चीस रुपए में तो हमारा निर्वाह हो जायगा।'

पुत्र का ऐसा आग्रह देखकर मा की आँखों में आँसू भर आये। संसार में सभी के उपकारों का बदला चुकाया जा सकता है। भक्ति-भाव प्रकट करके परमात्मा के उपकारों का बदला चुकाने का संतोष भी किया जा सकता है। एक मात्र माता के उपकारों का बदला नहीं चुकाया जा सकता। उसके उपकार पहचाने ही नहीं जा सकते। वह न तो बदला माँगती है और न कभी यह इच्छा करती है कि पुत्र में कृतज्ञता की भावना आये। पुत्र के सहज स्नेह को देखकर ही वह पुत्रजन्म की सार्थकता का अनुभव करती है। कृतज्ञता की एक साधारण चेष्टा देखकर ही उसका हृदय-सागर उमड़ने लगता है। मा निस्वार्थ प्रेम की सजीव मूर्ति है!

'अच्छा बेटा, अच्छा! तुझे जो अच्छा लगे वही करूँगी। भोजन तैयार है। तुझे कॉलेज जाने में देर न हो जाय।' आँसू पोंछते-पोंछते मा ने कहा।

'संसार इस मा से मजूरी करवाता है? इस प्रेमिल मा को गरीबी में गाड़कर समाज इसके प्राण चूसता है! अब मा को रत्ती भर काम नहीं करने दूँगा।'

भोजन करते हुए किरीट ने दृढ़ निश्चय किया। खा-पीकर वह कॉलेज गया। रोज की तरह आज भी मा उसे जब तक वह दिख सका देखती रही। हर्ष और शोक से उसके आँसू उमड़ आये :

'इसके पिता इसे कमाते हुए देखने के लिए जीवित नहीं रहे!'

माता ने फिर आँसू पोंछ डाले और घर का काम निबटाकर दूसरे का पानी भरने चली।

मा ने मन में निश्चय किया :

'किरीट देख न सके ऐसे समय काम निबटा लिया करूँगी।'

१६

नयने कंई नूर नवुं चलके
वदने नवी वत्सलता झलके ;
सखी ! एक ज तुं गमती खलके
मने, मूर्ति मनोहर माशुकनी !*

—कान्त

मीनाक्षी को पढ़ाना शुरू करने के बाद से किरीट में एक हलका-सा परिवर्तन हुआ। नंगे पाँव फिरने में गौरव समझनेवाला किरीट अब बूट-जूते पहिनने लगा। उसके सादे कपड़े तो नहीं बदले परन्तु सादे कपड़ों में सफाई आने लगी। उलझे हुए बालों में नियमित कंघी होने लगी। यदि कोई उससे कहता तो वह इस बात को स्वीकार नहीं करता। फिर भी उसकी पोशाक, उसके बाहरी दिखावे और बेतरतीब रहन-सहन में नाजुकता का प्रवेश हो चला था।

नारी का सम्बन्ध—नारी का सहवास—पुरुष को संस्कारी बनाता है। नारी की उपस्थिति में पुरुष की उजड्डता ग़ायब हो जाती है। नारी का अस्तित्व पुरुष को मनुष्य बनाता है। नारी न होती तो दुनिया में संस्कृति भी न होती। संस्कृति का इतिहास नारी के सतत

* नेत्रों में कुछ नूर नया चलके,
मुख पर नूतन वत्सलता झलके ;
सखि! एक तू ही प्रिय है जग में,
मुझे, मूर्ति मनोहर माशुककी!

सान्निध्य का विस्तृत वर्णन है।

मीनाक्षी धनी घर की बेटी थी। धनिकों और उनके वैभव को देखकर सुलग उठनेवाले किरीट के मनमें मीनाक्षी के परिवार और उसके वैभव के प्रति विशेष घृणा पैदा नहीं हुई। मीनाक्षी का व्यवहार किरीट के प्रति अत्यन्त आदरणीय था, वह दत्तचित्त होकर किरीट से पढ़ती और इस बात का पूरा-पूरा ख्याल रखती कि किरीट को अपना परिश्रम निष्फल होने की शिकायत न करनी पड़े। पाठशाला में मीनाक्षी आदर्श विद्यार्थिनी गिनी जाने लगी।

धीरे-धीरे मीनाक्षी को पढ़ने और किरीट को पढ़ाने का व्यसन पड़ गया। किरीट का ज्ञान उच्चश्रेणी का था और वह प्रत्येक विषय को पढ़ाते समय रसमय बना देता था। मीनाक्षी के पिता ने दो-चार बार गुप्त रूप से इस बात का पता लगाया कि उनकी पुत्री को कैसी शिक्षा दी जाती है। एक गोल मेज़ के आमने-सामने कुर्सियों पर किरीट और मीनाक्षी बैठते। किरीट शायद ही कभी मीनाक्षी की ओर देखता। पढ़ाते समय वह या तो नीचे की ओर देखता था या बगल की ओर। मीनाक्षी यदि कुछ पूछती तभी वह उसकी ओर देखकर जवाब देता था। उसके व्यवहार में असभ्यता या असंयम की छाया तक न थी। पढ़ाने के सिवा वह और कोई बातचीत नहीं करता था। पिता को संतोष हुआ। फिर तो वह कभी-कभी प्रकट रूप से आ बैठते। परीक्षा का परिणाम भी अच्छा रहा। मीनाक्षी ससम्मान उत्तीर्ण हुई। मीनाक्षी के पिता ने किरीट को बुलाकर कहा :

'मास्टर, तुम्हारा पढ़ाना सार्थक हुआ।'

'मीनाक्षी बहिन की समझ अच्छी है और परिश्रम भी खूब करती है।'

'सो तो है ही, परन्तु तुम्हारे पढ़ाने के ढंग से हम बहुत ही सन्तुष्ट हुए।

किरीट कुछ न बोला। मीनाक्षी के पिता ने मीनाक्षी को आवाज दी :

'मीनाक्षी !'

'जी !' कहती हुई मीनाक्षी ने प्रवेश किया।

'तेरे मास्टरजी को इनाम देना है। ले तो आ।'

'जी नहीं। मुझे इनाम नहीं चाहिये।' किरीट बोला।

'मैं कब कहता हूँ कि तुम्हें इनाम चाहिये ? यह तो मैं देना चाहता हूँ।'

'मैं ले नहीं सकता।'

'क्यों ?'

'साहब इनाम की शर्त नहीं है।'

सुनकर मीनाक्षी के पिता खिलखिला उठे।

'अरे मास्टर, इनाम की भी कहीं शर्त होती है ? बेटी, जा ले आ।'

मीनाक्षी इतने में चाँदी का एक प्याला ले आई। प्याले में कुछ रुपए रखे थे।

किरीट ने इनाम लेने से बिलकुल इन्कार कर दिया। मीनाक्षी के पिता इस विचित्र हठ को समझ न सके। जब वह भी हठ करने लगे तो लाचार हो किरीट को इनाम लेना पड़ा।

किरीट मीनाक्षी को पढ़ाने बैठा। पढ़ाना शुरू करने के पहले उसने मीनाक्षी से कहा :

'मैं तुम्हें इनाम देता हूँ।' यह कहकर स्वयं को मिला हुआ इनाम उसने मीनाक्षी के पास रख दिया।

'अरे, कहीं ऐसा भी होता है ? तुम्हें दिया गया है।'

'परन्तु अब यह मेरा है। फिर मैं तुम्हें इनाम में क्यों नहीं दे सकता ?'

'ना ना, किरीटकान्त ! ऐसा नहीं हो सकता।'

'मेरी यही इच्छा है। मैंने जैसे तुम्हारे पिता का मान रखा क्या तुम वैसे ही मेरा मान न रखोगी ?'

मीनाक्षी उलझन में पड़ गई। उसके चेहरे पर वह उलझन साफ दीख पड़ने लगी। किरीट उसके चेहरे की ओर देखता रहा। जीवन में प्रथम बार उसकी समझ में आया कि कई चेहरे ऐसे होते हैं जिनके सामने देखते रहना अच्छा लगता है। अन्त में मीनाक्षी ने इनाम ले लिया, परन्तु पूछा :

'मुझे तुम किसलिए इनाम देते हो ?'

'मेरा पढ़ाना सफल हुआ।'

किशोरी मीनाक्षी कुछ लजा गई। अपनी प्रशंसा सुनकर लज्जित न होनेवाला प्रशंसा का पात्र नहीं होता।

मीनाक्षी मैट्रिक की श्रेणी में आई। सुरेन्द्र ने एक दिन किरीट से पूछा :

'किरीट, मेरा एक काम करेगा ?'

'क्यों नहीं करूँगा ?'

'मीनाक्षी को यह एक पत्र दे देगा ?'

'किसका है ?'

'वाह ! इतना भी नहीं समझता ! मैंने लिखा है।' सुरेन्द्र ने हँसते-हँसते कहा।

'ना भाई। यह मेरा काम नहीं।'

'इसमें हर्ज क्या है ?'

'मैं उसका शिक्षक हूँ। मुझसे ऐसे पत्रों को देना-लेना नहीं हो सकता।'

'तेरी विचित्रता कुछ समझ में नहीं आती ! तेरे साथ बात करते ही चिढ़ होती है।

'भले ही हो, पर मैं तेरा पत्र दूँगा तो कितना अविनयी लगूँगा।'

'ऐसा कुछ नहीं है। यह तो तू जानता ही होगा कि मीनाक्षी के साथ मेरा विवाह होनेवाला है।'

'न, मुझे नहीं मालूम। अभी तेरा विवाह कहाँ तै हुआ है?'

'तो अब हो जायगा।'

'तो तू पत्र डाक से भेज या किसी आदमी के हाथ भेज।'

'परन्तु जहाँ तक विवाह तै न हो जाय इस तरह करना ठीक नहीं लगता।'

'तो फिर तू किसी और को तलाश। मैं तेरा पत्र नहीं ले जाऊँगा।'

'क्या तू भूल गया कि मैंने तुझे यह नौकरी दिलवाई है?'

'इसके लिए मैं तेरा कृतज्ञ हूँ। तू कहे तो लिख दूँ, परन्तु मुझे यह नहीं मालूम कि तेरी कृपा में मेरे लिए डाकिया बनने की शर्त थी।'

सुरेन्द्र और किरीट झगड़ पड़े। किरीट ने पत्र ले जाने से साफ इन्कार कर दिया। मीनाक्षी मैट्रिक में अच्छे नम्बरों से पास हुई। सुरेन्द्र और किरीट का मन-मुटाव कुछ दिनों तक बना रहा। फिर सुरेन्द्र किरीट से बोलने लगा।

एक दिन किरीट कॉलेज से पैदल घर लौट रहा था। राह में मीनाक्षी की गाड़ी मिल गई। मीनाक्षी ने गाड़ी रोककर किरीट से कहा :

'किरीटकान्त, बैठ जाओ।'

'न, तुम जाओ। मेरा और तुम्हारा रास्ता थोड़ी ही दूर से बदल जायगा।'

'कोई हर्ज नहीं। मैं तुम्हें घर पहुँचा दूँगी।'

'मुझे बीच में काम है। किरीट ने बहाना बनाया जिससे गाड़ी में बैठना न पड़े।

'उतनी दूर तक बैठ चलो।'

एक युवती के साथ गाड़ी में बैठने और न बैठने के बारे में बहस

करने की अपेक्षा किरीट ने बैठ जाना ही ठीक समझा। मीनाक्षी ने अपनी ही बैठक पर एक ओर को खिसककर उसके लिए जगह की, परन्तु किरीट सामने की बैठक पर सिकुड़कर बैठ गया।

उसी समय सुरेन्द्र की गाड़ी वहाँ से निकली। सुरेन्द्र और किरीट की आँखें चार हुईं। किरीट को सुरेन्द्र की आँखों में एक नये ही प्रकाश का आभास मिला।

'जो अभी इस गाड़ी में गये वह सुरेन्द्रलाल ही हैं न?' मीनाक्षी ने पूछा।

'हाँ।' किरीट ने जवाब दिया।

'तुम्हारी ही क्लास में हैं न?'

'हाँ।'

'बहुत अच्छे विद्यार्थी समझे जाते हैं, क्यों?'

'सच है। इसका जैसा और कोई विद्यार्थी नहीं है।'

'यह कैसे कहते हो?'

'हम दोनो साथी हैं।'

'परन्तु पिछली परीक्षा में तो तुम प्रथम आये थे।'

'तो क्या हुआ? पाँच नम्बर इधर या उधर। इसे फर्क नहीं कहते। और फिर क्या सब कुछ परीक्षा ही पर निर्भर है?'

'तो किस पर निर्भर है?'

'क्रिकेट और टेनिस में इसकी जोड़ का दूसरा कोई खिलाड़ी नहीं। न इसके समान और कोई भाषण देनेवाला ही है।'

'तुम भी टेनिस या क्रिकेट खेलते हो?'

'नहीं।'

'क्यों?'

जवाब देते हुए किरीट सोच में पड़ गया।

'यों ही। शुरू से नहीं खेला इसलिए अब बनता नहीं।'

मीनाक्षी चुप हो गई। किरीट भी कुछ न बोला। मीनाक्षी पाँव पर पाँव रखे तकिये के सहारे बैठकर बाहर की ओर देखने लगी। किरीट की दृष्टि में चोर आ बैठा। लुक-छिपकर वह धीरे-धीरे मीनाक्षी की ओर देखने लगा। मोगरे की कलियाँ लम्बी होकर मीनाक्षी की अंगुलियाँ बन गई थीं। उसके अर्ध नग्न हाथ में मक्खन की लुनाई और खिले हुए गुलाब की ताज़गी किरीट ने देखी। पढ़ने बैठनेवाली नन्हीं सी-मीनाक्षी का घेरा और आकार प्रकार गाड़ी में बढ़ा हुआ-सा दीखा। उसकी साड़ी हृदय-प्रदेश पर हिलोरें लेती हुई दीखी। अर्ध विकसित कमल की पंखुड़ियाँ खिलकर जिस तरह सम्पूर्ण पुष्प को जुदा ही सौन्दर्य प्रदान करती हैं उसी तरह मीनाक्षी के चेहरे का प्रत्येक अवयव पूरी तरह बढ़कर चेहरे के सम्पूर्ण विकास को प्रकट कर रहा था। और आँख...

आँख का विचार करते ही मीनाक्षी ने किरीट की ओर आँख घुमाई। किरीट चौंका, जागा। चोरी करते हुए पकड़ लिया गया हो इस तरह सकपकाकर उसने चटपट अपनी दृष्टि फिरा ली, परन्तु उसके पहले ही मीनाक्षी ने किरीट को पकड़ लिया। एक क्षण—नहीं, आधी क्षण-निमिष भर—के लिए दोनो की आँखें मिलीं और मिलते ही किरीट ने अपनी आँखें हटा लीं।

परन्तु उस निमिष-भर में निहारा हुआ दृश्य किरीट आजीवन भूल न सका।

'मीनाक्षी इतनी बड़ी हो गई!' किरीट के मन में प्रश्न उठा।

'मीनाक्षी इतनी अधिक सुन्दर है!' साथ ही साथ आनेवाले इस विचार को उसने बलपूर्वक रोका।

'तुम यहीं कहीं रहते हो न!' मीनाक्षी की आवाज़ ने किरीट को जाग्रत किया। उसने देखा कि गाड़ी उसकी कोठरी के बिलकुल पास आ गई थी।

'हाँ।' वह केवल इतना ही बोल सका।

'रास्ते में तुम्हें कुछ काम था न? कहा क्यों नहीं?'

'कल देखा जायगा। तुम्हें क्यों देर करूँ? रास्ते में उसे कुछ भी काम नहीं था। गाड़ी में नहीं बैठने के लिए उसने यह बहाना बनाया था, परन्तु उसे इसका ख़याल ही न रहा।

'गाड़ी कहाँ खड़ी करवाऊँ?' मीनाक्षी ने पूछा।

'बस यहीं।'

'नहीं नहीं, तुम्हारे घर तक चली जायगी।'

'मेरा घर आ गया। यहीं है।'

'कौन सा?'

'यही।' एक छोटी-सी कोठरी की ओर अंगुली दिखलाते हुए उसने कहा। जीवन में पहली बार उसे अपने छोटे घर पर—अपनी ग़रीबी पर—घृणा हुई।

चबूतरे पर एक कम्बल ओढ़े हुए किरीट की मा उसकी प्रतीक्षा कर रही थी।

गाड़ी वहीं ठहरी। किरीट नीचे उतरा। उसे ध्यान आया कि कुछ शिष्टाचार करना चाहिये।

'तुम्हें बहुत तकलीफ़ हुई।' किरीट ने मीनाक्षी से कहा।

'नहीं जी। इसमें क्या हुआ? मैं तो तुम्हें रोज़ छोड़ जाया करूँगी। पन्द्रह मिनिट का अन्तर पड़ेगा।'

कम्बल ओढ़े हुए मज़दूरिन जैसी लगती अपनी मा का शिष्ट मीनाक्षी के साथ परिचय करवाया जाय या नहीं; इस चिन्ता में पड़े हुए किरीट ने गाड़ी को लौटकर जाते हुए देखा।

'मैं जाती हूँ।' दौड़ती हुई गाड़ी में से मीनाक्षी की आवाज़ सुन पड़ी।

'आया बेटा?' किरीट की मा मंगला ने कहा।

मा की पोशाक पर क्षणभर के लिए पैदा होनेवाली किरीट की घृणा नष्ट हो गई। वह मा के कम्बल को नहीं, पर मा को देखता रह गया।

'मा, आज ओढ़ना क्यों पड़ा?'

'कुछ नहीं रे। ज़रा सर्दी मालूम पड़ती थी इसलिए ओढ़कर बैठ गई।' किरीट ने मा के कपाल पर हाथ रखा। कपाल तवे की तरह गर्म था।

'मा, तुझे बुखार-चढ़ा है!' किरीट चिल्ला उठा।

'आ गया होगा। शरीर है।'

'मैं गाड़ी ले आता हूँ। हम डॉक्टर के यहाँ चलेंगे।'

'डाक्टर मेरा क्या करेगा! यह तो यों ही मिट जायगा।'

'तो मैं डॉक्टर को घर बुला लाता हूँ।'

'तेरी मा अभी नहीं मरने की! जरा-सा बुखार आ जाने पर ऐसा क्या हो गया?' हँसकर मंगला ने कहा।

पच्चीस रुपए मासिक वेतन पर डॉक्टर-वैद्य बुलाने का इन्तजाम हुआ है, किरीट इसे जानता था; परन्तु मा का मन रखने के लिए उसी समय डॉक्टर बुलाने का विचार उसने छोड़ दिया।

घर में जाकर मा के लिए उसने बिस्तर बिछा दिया और सुलाकर उसका सिर दबाने लगा।

ग्रेजुएट बनने की तैयारी करनेवाले अमूल्य बेटे को सिर दबाने से रोकना मंगला को ठीक न जँचा। उसने किरीट को रोककर कहा:

'मेरा सिर दर्द नहीं करता।'

'थोड़े पाँव दबा दूँ।' कहकर किरीट मा के पाँव दबाने बैठा।

पुत्र के सेवा-भाव पर न्योछावर होती मा की आँखों में आँसू भर आये।

'मैं मर जाऊँ, मेरे लाल! तुमसे कहीं पाँव दबवा सकती हूँ! रहने दे, मेरे पाँव नहीं दुखते।'

'मा, तू तो बड़ी ऐसी है। मैं थक जाऊँगा क्या?' किरीट ने जबर्दस्ती मा के तलुए मलने शुरू किये। थोड़ी देर बाद मंगला ने पूछा :

'किरीट, आज तू किसकी गाड़ी में बैठकर आया?'

'मीनाक्षी की गाड़ी थी—जिन्हें मैं पढ़ाता हूँ न, उनकी।'

'तू कहता न था कि वह तो लड़की है।'

'हाँ, तो?' बहुत कम हँसनेवाले किरीट ने हँसकर जवाब दिया।

'इतनी बड़ी तो है?···कैसी परी जैसी खूबसूरत थी?' इतना कहकर मंगला ने निःश्वास डाला और करवट बदली; पुत्र के भविष्य का चित्र देखती हुई माता भावी पुत्र-वधू की कल्पना कर उसकी संभावना के बारे में विचार करने लगी।



२०

गाले ढळे नमणी पांपण अर्ध मींची
ढांके वळी वळी ज पालव ऊरदेश !
संकोरी कोर सरती कर वेलडीए,
तेना नथी रसिक शास्त्रीय भाष्यकारो !*

—न्हानालाल

मीनाक्षी को सभी दर्षों के लिये खानगी शिक्षक की आवश्यकता न थी, परन्तु धनवानों के बालक बिना खानगी शिक्षक के पढ़ें तो शायद उनका महत्त्व घट जाता होगा। मीनाक्षी से जब कभी पूछा जाता तो वह किरीट के पढ़ाने के बारे में अत्यन्त उत्साह प्रकट करती थी। किरीट को भी कई बार ऐसा लगता था कि मीनाक्षी को अब खानगी शिक्षण की आवश्यकता नहीं है। एक-दो बार उसने ऐसा इशारा भी कर देखा।

'मेरे सिखाये बिना ही तुमने इतना सब कर डाला यह तो प्रशंसनीय है। अब तुम्हें शायद ही मेरी आवश्यकता हो!'

'नहीं नहीं। तुम नहीं आओगे तो मुझसे कुछ भी नहीं बनेगा।'

'ऐसा भी कहीं हो सकता है? गणित का इतना कठिन प्रश्न तुमने

* अर्धोन्मीलित पलकें कपोल पर छाई हैं, आँचल उर-प्रदेश को बार-बार ढँक रहा है, हाथरूपी लता से खिसकनेवाली शोभनीय किनार के रसिक शास्त्रीय भाष्यकार नहीं हैं।

ख़ुद ही हल कर लिया। इससे तो ऐसा नहीं मालूम होता कि अब मुझे तुम्हें कुछ और सिखाना आवश्यक हो।'

'मैं सच कहती हूँ। तुम जिस दिन नहीं आ पाते हो उस दिन कुछ भी पढ़ने का मन नहीं होता।'

इसलिए मैट्रिक पास हो जाने पर भी मीनाक्षी ने कॉलेज की पढ़ाई के लिए किरीट को चालू रखने का आग्रह किया। उसके पिता तो जो कुछ मीनाक्षी कह देती वही करते थे। किरीट ने तो बहुत कहा कि कॉलेज की पढ़ाई के लिए उसकी आवश्यकता नहीं रही है, परन्तु मीनाक्षी की इच्छानुसार उसे अपना शिक्षण-क्रम चालू रखना पड़ा।

जो शिक्षक अपने विषय को रसमय बना सकता है वह जन्म-भर के लिए विद्यार्थियों का पूज्य-भाव प्राप्त कर सकता है। जिस शिक्षक में अपने विषय को सरस बनाने की योग्यता नहीं होती वह विद्यार्थियों द्वारा कई उपनाम प्राप्त कर जीवन-भर के लिए उनकी हँसी का पात्र बन जाता है।

किरीट मीनाक्षी को अच्छा लगा था। बड़े आदमी की लाड़िली बेटी को ख़ानगी शिक्षक जैसे तुच्छ प्राणी की ज़रा-भर पर्वाह नहीं होती, परन्तु जब ऐसी पर्वाह की जाने लगे तो समझना चाहिये कि शिक्षक में कोई असाधारण गुण है।

फिर चौदह से चौबीस वर्ष के अर्से में किशोर-किशोरी यौवन को प्राप्त होते है। इस संगम-काल जैसा संस्कारग्राही युग सारे जीवन में फिर कभी नहीं आता। इसमें सौन्दर्य की अद्भुत पिपासा जाग्रत होती है। मनुष्य का अणु-अणु सौन्दर्य की खोज में व्याकुल हो जाता है। इस सौन्दर्य की खोज में लगे हुए नयन धतूरे को कुन्दन मानते हैं, ओस में मोती और आकाश गंगा में गुलाब के फूलों का बिस्तरा देखते हैं। युवती युवक को देवता समझती है; युवक युवती में देवी के दर्शन करता है। वे वास्तव में देव-देवी हैं या नहीं इसका निर्णय

तो किया नहीं जा सकता; इसकी परख तो किसी विचित्र अगम्य दृष्टि-सम्पात से होती है। परस्पर आकर्षित होनेवाले युवक-युवती को इसकी ज़रा भी पर्वाह नहीं होती कि उनकी रूप-गुण की व्याख्या निष्णात परीक्षक की व्याख्या से मेल खाती है या नहीं।

मीनाक्षी और किरीट इस नव-जीवन के प्रारम्भ काल में एक दूसरे के संपर्क में आये। मानव-हृदय किन्हीं समानान्तर पटरियों पर चलनेवाली रेलगाड़ी नहीं है। यह बिलकुल असम्भव है कि पढ़ने पढ़ाने के उद्देश्य से मिलनेवाले युवक-युवती के हृदय पढ़ने लिखने के सिवा दूसरा कोई विचार ही न करें। मीनाक्षी यह जानती थी कि भविष्य में सुरेन्द्र के साथ उसका विवाह होने की सम्भावना है, परन्तु सम्भावना निश्चय नहीं है। सुरेन्द्र उसे दिखाई पड़ता। वह कुतूहल से उसकी ओर देखती। उसमें खामी निकालने जैसा कुछ न था। सुरेन्द्र के आँखों से ओझल होते ही वह कुतूहल नष्ट हो जाता था।

परन्तु किशोरी मीनाक्षी में जब यौवन विकसित होने लगा था तभी उसके जीवन में किरीट ने प्रवेश किया। सतत परिचय का फल स्नेह होता है। अधिकतर यह स्नेह मैत्री की सीमा तक पहुँचता है, परन्तु सौन्दर्य पिपासित नव यौवन में प्रवेश करनेवाले युवक-युवती परस्पर नित्य समागम में आएँ और उनका स्नेह मैत्री की सीमा पर ही अटक जाय तो समझना चाहिये कि दो में से कोई एक-दूसरे के लिए अयोग्य है। प्रथम दर्शन पर हँसने के लिए तत्पर मीनाक्षी को दूसरी बार में लगा कि किरीट का दिखावा हँसने जैसा तो नहीं ही था। हाँ, उसने 'सभ्य' पोशाक नहीं पहनी थी, तो भी सादी वेश-भूषा में वह अशोभन तो नहीं लगता था। अपनी ऊँचे प्रकार की अध्ययन-शीलता के लिए वह बहुत ही ख्यातिप्राप्त था। शर्मीला—विरक्त—शिक्षक जब कोई-सा भी विषय पढ़ाने लगता तो उसकी वाणी में सरस्वती आ बैठती थी। उसमें पूरी शालीनता थी। पढ़ाने के सिवा

जाने या अनजाने किसी तरह की चालाकी करने का उसने कभी भी प्रयत्न नहीं किया। शिष्या की अयोग्यता उसमें क्रोध या तिरस्कार पैदा नहीं करती थी, इसलिए ऐसे शिक्षक को प्रसन्न रखने का ही मीनाक्षी ने निश्चय किया। किरीट अप्रसन्न न हो इसलिए उसने अपना अध्ययन यहाँ तक सुधारा कि किरीट के मन में मीनाक्षी के प्रति आदर उत्पन्न होने लगा।

मीनाक्षी की ओर किरीट ने कभी ताक कर नहीं देखा था। वह यही समझता था कि पहले दिन देखी हुई लड़की दो-तीन साल तक वैसी ही दिखती होगी। मीनाक्षी के क्रमशः होनेवाले बौद्धिक विकास से वह अवगत था; परन्तु किरीट को यह भान नहीं हो सका था कि वर्ड्सवर्थ का 'She was phantom of delight' या कलापी का 'बिल्व मंगल' काव्य समझ सकनेवाली लड़की का शारीरिक विकास भी होता जा रहा है। इतना तो सच है ही कि किरीट को इस शिष्या को पढ़ाना अच्छा लगता था। इसके परिचय में आने के बाद से किरीट बहुत ही सुघड़ बन गया था। उसने अपनी वेशभूषा की विचित्रता तज दी थी। ग़रीबी का अभिमान तो उसमें था ही, परन्तु इस अभिमान को लेकर उसके रहन सहन और व्यवहार में जो कठोरता दीख पड़ती थी वह मीनाक्षी के परिचय में आने के बाद से बहुत कुछ घिस गई थी। वह धनवान बनने के स्वप्न देखने लगा। यद्यपि स्वाभाविक तौर पर वह पाश्चात्य समाज का पक्षपाती था और कभी-कभी अपनी शिष्या को बहुत ही गंभीरता से मानवी समानता की आर्थिक संभावनाओं के बारे में समझाता था, फिर भी अच्छा वेतन, अच्छा मकान और सुखमय जीवन उसे मोहित करते थे। उसके हृदय के एक कोने में सुखमय जीवन बिताने की आकांक्षा पैदा हो गई थी।

ग्रहों की गति में होनेवाली विकृति का अध्ययन करते-करते एकाएक दूरबीन में कोई नया ग्रह दिखाई दे जाय, तो सूर्य-मण्डल की

विकृति का गणित हल हो जाता है : हृदयाकाश के अनजान आकर्षण—स्थिर विचारों के सीमा-चिह्नों में होनेवाली उथल पुथल—बहुत देर तक समझ में नहीं आते ; परन्तु इस सत्य का पता लगते ही कि हृदयाकाश में उगा हुआ कोई नवीन तारा विचारों की अस्थिर अवस्था का मूल कारण है, अनेको विचित्र बातें समझ में आ जाती हैं। यह सत्य समझने में दोनो को समय लगा कि मीनाक्षी को किरीट और किरीट को मीनाक्षी अच्छे लगते हैं। इस बात का सबसे पहले ध्यान आया मीनाक्षी को। मूर्ख पुरुष को इस विषय का ज्ञान देर में आता है। मीनाक्षी की गाड़ी में घर लौटते हुए, बेखबर हो, उसके शरीर का निरीक्षण करता हुआ किरीट जब पकड़ा गया तभी उसे पता चला कि उसकी हृदय-गति का मध्य-बिन्दु तो मीनाक्षी है !

उसकी माता ने इस ज्ञान को अधिक प्रज्वलित कर दिया। इसे प्रज्वलित करने के लिए विशेष शब्दों या चेष्टाओ की आवश्यकता नहीं थी।

'इतनी बड़ी तो है !...कैसी परी जैसी सुन्दर है !' ये दो वाक्य और एक निश्वास किरीट के सारे हृदय को सुलगाने के लिए बस थे। मा-बेटे रात-भर जागते रहे। मंगला को बुखार था ही, किरीट को उसके पास बैठकर जागते रहना अच्छा लगा। जागते-जागते वह स्वप्न-जाल बुनने लगा। ये स्वप्न-जाल किसके आस-पास बुने जा रहे थे ?

यदि ग़रीबों के पास से उनके स्वप्न भी छीन लिये जायँ तो उनके जीवन में कौनसा सुख बच रहेगा ? एक भी नहीं। ग़रीब लकड़हारा राजकुमारी के सपने देखता और सुखी होता है। कुएँ से पानी खींचनेवाली कोई कुमारी अपने घड़े उठाने में किसी राजकुमार की सहायता की कल्पना कर रोमांचित होती है ! कौन है जिसने ऐसे स्वप्न नहीं देखे हों ?

मा के बहुत आग्रह करने पर आधीरात बीते जब किरीट सोया

तो उसने मीनाक्षी को नये ही स्वरूप में देखा। वह नवीन स्वरूप भी विविध मुद्राएँ धारण करता था। प्राचीन काल से दुनिया कहती चली आ रही है कि युवक-युवतियों को इकट्ठे नहीं होने देना चाहिये। इसका परिणाम संरक्षकों की धारणा से जुदा ही होता है।

बात सच है। फिर भी युवक-युवती इकट्ठे होते हैं और वे परिणाम होते हैं जिन्हें संरक्षकों ने नहीं सोचा था।

सुबह मंगला का बुख़ार कम हो गया; परन्तु साँस का दौरा अधिक था। मीनाक्षी को एक ही घंटा पढ़ा, डाक्टर को साथ लाने का निश्चय कर, किरीट बाहर निकला, परन्तु उसके पाँव अस्थिर हो रहे थे।

समय हो जाने से मीनाक्षी उसकी प्रतीक्षा में ही बैठी थी। किरीट ने भारी क़दमों से मीनाक्षी के कमरे में प्रवेश किया। वह मीनाक्षी की ओर देख न सका, परन्तु जब-जब वह उसके शरीर के अन्य अवयवों की ओर दृष्टि डालता तो उसे अपनी मा की बात याद आ जाती:

'इतनी बड़ी तो है!'

उस देह की प्रशस्तता सौष्ठवपूर्ण थी। गाड़ी में लुक-छिपकर देखे हुए उसके शरीर को फिर से वैसे ही देखने के प्रयत्न में उसका शरीर रोमांचित हो आया। वह ठीक से पढ़ा न सका। मीनाक्षी कुर्सी खींच-कर उसके पास आ बैठी और बोली:

'आज यह निबन्ध ही जाँच दीजिये। और कुछ नहीं पढ़ना है।'

मीनाक्षी ने नोटबुक और पेन्सिल किरीट के सामने कर दिये और मेज़ पर कुहनी टेक पाँचों अँगुलियों पर गाल धरे बैठ गई।

मीनाक्षी की निकटता से किरीट और भी विह्वल हो गया। वह निबन्ध बराबर पढ़ नहीं पा रहा था। उसे इसका भी पूरा भान न रहा कि वह क्या जाँच रहा है। एक दो ग़लतियाँ छूट गईं, परन्तु किरीट की निगाह उन पर न पड़ी। साथ ही साथ देखनेवाली मीनाक्षी की

निगाह चोरी-छिपे उसके चेहरे की ओर देख लेती थी इसका भी ध्यान किरीट को न था। किरीट ने धीरे से पन्ना उलटा।

'देखो, देखो एक ग़लती छूट गई है।' ऐसा कहकर मीनाक्षी ने पन्ना फिर लौटा। ऐसा करने में मीनाक्षी का हाथ किरीट के हाथ से छू गया। किरीट चौंक पड़ा और पेन्सिल उसके हाथ से छूट गिरी। उसके चेहरे पर लाली छा गई और सारे शरीर के रोंए खड़े हो गये। घबराकर उसने मीनाक्षी की ओर देखा। मीनाक्षी भी उसी की ओर देख रही थी। वह मीठी हँसी हँसकर बोली :

'ऐसा क्यों ? चौंकते क्यों हो, किरीटकान्त ?'

'कुछ नहीं। ऐसे ही।'

'तुम्हारी तबियत तो ठीक है न ?'

'हाँ !' बड़ी कठिनता से किरीट की ज़बान खुली।

'देखूँ।' स्थिरता-पूर्वक मीनाक्षी ने किरीट के हाथ पर अपना हाथ रखा।

मखमल जैसे मुलायम और नाग जैसे चिकने हाथ का इतनी मृदुता से स्पर्श होते ही किरीट का शरीर शिथिल हो गया। साँप का स्पर्श होता हो और उसका प्रतिकार करने का बल न हो, ऐसी विकलता का अनुभव करनेवाले किरीट को उस स्पर्श का एक क्षण जीवन भर हृदय में उथल-पुथल मचा देनेवाला हो पड़ा।

हाथ के हटते ही किरीट ने नाग-पाश से मुक्ति पाने का अनुभव किया।

'बुख़ार तो नहीं है, फिर ऐसे क्यों ?' मीनाक्षी ने पूछा।

किरीट का मन वहाँ से भागने का हो आया। उसने उत्तर दिया :

'कल रात का जागरण है।'

'इतना अधिक पढ़ते हो ?'

'मेरी मा की तबियत खराब है।'



'अरे ! मैं पिताजी से कहूँ कि हमारे डाक्टर को भेज दें ?'

'नहीं नहीं, इसका तो मैं इन्तज़ाम कर लूँगा ।'

'तुम तो भाई बहुत ही विरक्त हो ! इसमें कुछ अधिक उपकार नहीं हो जायगा ।'

'आवश्यकता होने पर मैं अवश्य कहूँगा । धन्यवाद ।'

दोनो थोड़ी देर तक मौन रहे । निबन्ध जाँचना एक ओर रह गया ।

'तो मैं आज छुट्टी लूँ ? आज बराबर पढ़ाई न हुई ।' किरीट भागने के लिए मौका देख रहा था ।

'मुझसे भी आज पढ़ा नहीं जा सकेगा । जाने क्यों ?' मीनाक्षी ने कहा : 'नमस्ते !'

'नमस्ते !' कहकर किरीट दरवाज़े से बाहर निकला । एक ओर से आते हुए मीनाक्षी के पिता को किरीट ने नहीं देखा । खिड़की की राह देखती हुई मीनाक्षी की ओर भी मुड़कर उसने नहीं देखा । उसके हाथ पर कोई 'भयंकर' फिसलाहट लिपट रही थी ।